इकाई 24 यात्रा वृत्तांत : किन्नर देश की ओर

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य
24.1 प्रस्तावना
24.2 हिंदी में यात्रा-वृत्तांत की परंपरा और राहुल सांकृत्यायन
24.3 **किन्नर देश की ओर** की सामान्य विशेषताएँ
24.4 यात्रा वृतांत की भाषा-शैली
24.5 सारांश

24.0 उद्देश्य

एम.ए. हिंदी के बीज पाठ्यक्रम-4 के खंड-6 से संबंधित इस इकाई में यात्रा-वृत्तांत से संबंधित पाठ **किन्नर देश की ओर** का विश्लेषण और मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- गद्य विधा के रूप मे यात्रा-वृत्तांत के वास्तविक अर्थ, संदर्भ, विभिन्न रूपाकारों और प्रयोजन को जान सकेंगे।
- राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांत **किन्नर देश की ओर** के पाठ्य अंश की विषयवस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे।
- उक्त यात्रा वृतांत की भाषागत और शिल्पगत विशेषताओं का परिचय प्राप्त करेंगे।
- उक्त यात्रा वृतांत के महत्व और विशिष्टता को जान सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

'नाटक और अन्य गद्य अन्य विधाएँ' नामक इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत आधुनिक काल में उभर कर सामने आई अनेक नई साहित्यिक विधाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होगा कि हिंदी में आधुनिक नवजागरण के साथ ही न केवल गद्य का प्रभाव बढ़ा बल्कि अनेकानेक नई गद्य-विधाओं के रूप भी सामने आए।

ऐसा नहीं है कि हमारी परंपरा में यात्रा की अवधारणा और उसके वर्णन नहीं थे। यात्रा, यात्रा की अनिवार्यता, यात्रा के प्रयोजन और काव्य ग्रंथों में समाहित यात्रा-वृत्तांतों का विपुल भंडार साहित्य-इतिहास में उपलब्ध है। किंतु आधुनिक अर्थों में एक विशिष्ट विधा के रूप में यात्रा-वृत्तांतों का लेखन और प्रकाशन नई शुरूआत थी। गद्य की अनेक नई विधाओं की तरह इसका श्रेय भी पश्चिमी साहित्य को जाता है।

पश्चिमी साहित्य के प्रभाव को स्वीकार करने के बाद भी यह कहना उचित नहीं होगा कि ये विधाएँ अपने चरित्र में मात्र अनुकरणधर्मी हैं। हमारे यात्रा-वृत्तांत अपनी परंपरा, देश, समाज और शिल्प की निजी विशेषताएँ लिये हैं। इस अर्थ में इसका अध्ययन पश्चिमी साहित्य से अलग और मौलिक रूप में किया जाता है। विधा के निरंतर विकास के साथ उसके संबंध में हमारी दृष्टि और रचना-शिल्प का भी निरंतर विकास होता गया है।

हिंदी में यात्रा वृत्तांत एक अलग विधा के रूप में एकदम नई होने के कारण उसमें लिखे साहित्य का वैसा विपुल भंडार नहीं है जैसा हमारी काव्य और नाटक जैसी परंपरित सुपरिचित

विधाओं में है। नई विधाओं में भी उपन्यास, कहानी की तरह उसमें केवल अनुभव और कल्पना के बल पर लिखने का वैसा सुभीता नहीं है। यात्रा-वृत्तांत लिखने की कई पूर्व शर्तें हैं जो उसके लेखन को विरल बनाती हैं। उनमें प्राथमिक और महत्वपूर्ण शर्त तो यही है कि इसके लिए लेखक का वास्तविक यात्रा पर निकलना ज़रूरी है। यह यात्रा भी केवल पर्यटक की सी विहंगम दृष्टि वाली नहीं बल्कि हर स्थल, मानव-संपर्क, रास्ते, देशकाल भिन्नता और विविधता में गहरे प्रवेश करने वाली दृष्टि से संपन्न और अपने समस्त अनुभव-ज्ञान से उसे संपुष्ट करने वाली हो। यह संभव है कि लेखक के लिए कोई यात्रा बड़ी ही रोमांचकारी और अनुभवजन्य रही हो, लेकिन जब तक पाठक को भी पूरी तरह शामिल करने की क्षमता उस वृत्तांत में नहीं होगी, तब तक वह गूंगे का गुड़ ही बनी रहेगी। इसलिए यात्रा-वृत्तांत में अपने अनुभव और रोमांच को पाठक तक उसी उत्कटता में पहुँचाने के लिए अतिरिक्त शैलीगत विशेषताओं की आवश्यकता है।

इन और ऐसी अन्य पूर्वशर्तों के कारण यात्रा-वृत्तांत विधा को साधना एक कठिन कार्य है।

प्रस्तुत इकाई में इन सब बातों पर विचार-विमर्श के साथ ही यात्रा-वृत्तांत लेखन में राहुल सांकृत्यायन के महत्वपूर्ण योगदान और उनके वैशिष्ट्य की चर्चा की जाएगी। इसी संदर्भ में उनके यात्रा-वृत्तांत **किन्नर देश की ओर** का विश्लेषण किया जाएगा।

24.2 हिंदी में यात्रा-वृत्तांत की परंपरा और राहुल सांकृत्यायन

हिंदी में यात्रा-वृत्तांतों का प्रारंभ अन्य आधुनिक गद्य-विधाओं की तरह भारतेंदु युग से ही हुआ किंतु उससे पूर्व भी कुछ यात्रा-वृत्तांतों के उल्लेख मिलते हैं। ये सभी हस्तलिखित रूप में प्राप्त हैं। भारतेंदु काल में लिखे अधिकांश यात्रा-वृत्तांत उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। स्वयं भारतेंदु के पाँच यात्रा संबंधी निबंध हैं - सरयू पार की यात्रा, मेहदावल की यात्रा, लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा और वैद्यनाथ की यात्रा। बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' पत्रिका में 'कतिकी नाहन' तथा 'गया यात्रा' का वर्णन किया है।

प्रकाशित पुस्तकाकार रूप में सबसे पहला हरदेवी की 'लंदन यात्रा' पुस्तक मिलती है जो सन् 1883 ई. में ओरिएंटल प्रेस, लाहौर से प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् भगवानदास वर्मा की 'लंदन का यात्री' (1884), पं. दामोदर शास्त्री की 'मेरी पूर्वादिग्यात्रा' (1885), तोताराम वर्मा की 'केदारनाथा यात्रा' (1890) आदि प्रसिद्ध हैं। इस युग का सबसे महत्वपूर्ण यात्रा-वृत्तांत श्री देवीप्रसाद खत्री का 'रामेश्वर यात्रा' है जिसमें साहित्यिक शैली में खत्री जी ने प्रयाग, चित्रकूट, द्वारका, रामेश्वर समेत अपनी बारह यात्राओं का वर्णन किया है। सन् 1900 ई. के बाद अनेक पत्र-पत्रिकाओं में यात्रा-संबंधी विवरण लगातार प्रकाशित हुए। इनमें महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित सरस्वती' पत्रिका का विशेष योगदान है क्योंकि वे विषय की विविधता के लिए यात्रा-वृत्तांतों के प्रकाशन को बढ़ावा देते थे। इस समय के यात्रा-वृत्तांत लेखकों में स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी के अलावा श्रीधर पाठक, लक्ष्मीशंकर मिश्र, हरिस्वरूप शर्मा शास्त्री, ठाकुर गदाधर सिंह, रमाशंकर व्यास, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आदि के नाम प्रमुख हैं।

परवर्ती काल में यात्रा वृतांतों के लेखन में तेज़ी से विकास हुआ। अब यात्रा वृतांत विवरण की सीमा को लांघकर रचनात्मक अनुभव को विशिष्ट शैली और भाषिक सौंदर्य से युक्त होकर लिखे जाने लगे। ऐसे यात्रा वृतांत लेखकों में अज्ञेय, निर्मल वर्मा, यशपाल, शानी, मंगलेश डबराल आदि का उल्लेखनीय स्थान हैं।

इस प्रकार हिंदी में यात्रा-वृत्तांतों की एक अच्छी-खासी समृद्ध परंपरा बन गई जिसमें नए-पुराने सभी लेखकों ने अपना योगदान किया है। ये सभी यात्रा-वृत्तांत प्रयोजन, विषय, शैली की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण हैं।

महापंडित की उपाधि से विख्यात, हिदीं की सभी विधाओ में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले राहुल सांकृत्यायन का हिंदी यात्रा-वृत्तांत लेखन के क्षेत्र में भी सर्वोपरि योगदान रहा है। देश-विदेश की भाषा, संस्कृति, साहित्य और मानव-समाज की वास्तविकता के प्रति अदम्य और अटूट जिज्ञासा ने उन्हें एक सतत यात्री बना दिया। इसी जिज्ञासा ने उन्हें जीवन के अंतिम समय तक शारीरिक व्याधियों और यात्रा की कठिनाइयों के रहते हुए भी यात्री बनाए रखा। मृत्यु शैय्या पर पड़े होने के समय भी उनकी भावा यात्राओं की योजना तैयार पड़ी थी। मानव-जीवन में यात्रा के सर्वोपरि महत्व को प्रतिपादित करते हुए वे उर्दू का निम्नलिखित शेर अक्सर कहते थे :

'सैर कर दुनिया की गाफिल ज़िंदगानी फिर कहाँ,
ज़िंदगानी गर रही तो नौजवानी फिर कहाँ।'

यात्रा करते हुए नौजवानी की यह लालसा उनके वर्णन के बीच अक्सर फूट पड़ती है। **किन्नर देश की ओर** यात्रा-वृत्तांत में एक तरूण युवक से बात करते हुए अचानक यह पुराना विचार टीस सा उटता है - 'इन्हीं की भांति निर्द्वन्द्व हो गदहा, खच्चर और तंबू लिए एक देश से दूसरे देश में घूमूं। काश, मैं बीस बरस का हो जाता।.... किंतु क्या पचपन साल से बीस साल के होने की औषधि दुनिया में प्राप्त हुई है?'

इससे समझा जा सकता है कि राहुल जी में घुमक्कड़ी के प्रति कैसा आकर्षण था। यही नहीं, घुमक्कड़ी से प्राप्त हुए अपने अनुभव और ज्ञान को दूसरों तक पहुंचाने के लिए उन्होंने अनेक यात्रा ग्रंथों की रचना ही नहीं की बल्कि यात्रा के प्रति लोगों में आकर्षण पैदा करने और उसके गुर सिखाने के लिए 'घुमक्कड शास्त्र' पुस्तक ही लिख दी। इसमें यात्रा की उपादेयता, तैयारी प्रक्रिया, ध्यान योग्य बातें यानी कि यात्रा का पूरा सिद्धांत और व्यवहार शास्त्र है। इसके अतिरिक्त जो यात्रा साहित्य उन्होंने लिखा, वह इस प्रकार है - 'तिब्बत में सवा बरस' (1933), 'मेरी यूरोप' यात्रा' (1935), 'मेरी तिब्बत यात्रा' (1937), 'किन्नर देश में' (1948), 'राहुल यात्रावली' (1949), 'रूस में पच्चीस मास' (1952), 'हिमालय परिचय' (1953) तथा 'गढ़वाल परिचय (1955)।

आपके पाठ्यक्रम में **किन्नर देश की ओर** नाम से यात्रा के जिस वृतांत को पाठ के रूप में दिया गया है, वह उनकी 'किन्नर देश में' यात्रा-वृत्तांत पुस्तक से लिया गया है। किन्नर देश से अभिप्राय प्राचीन किन्नर जाति से आबाद उस पर्वत प्रदेश से है जो तिब्बत-लद्दाख-सीमा से मिला हुआ है। पहले यह क्षेत्र पंजाब के अधीन था लेकिन आज हिमाचल प्रदेश के अंतर्गत आता है।

24.3 'किन्नर देश की ओर' की सामान्य विशेषताएँ

नई गद्य-विधा होने के कारण यात्रा-वृत्तांत ने अपनी समकालीन अन्य नई गद्य-विधाओं से काफी कुछ लिया है। जिन विधाओं की अनेक विशेषताओं को विशेष रूप से उसने आत्मगत किया है उनमें प्रमुख रूप से आत्मकथा, जीवनी, कथा-कहानी, संस्मरण और डायरी हैं। यात्रा-वृत्तांत के बीच में जब किसी प्राकृतिक सौंदर्य का मानवीय भावाकुलता से लेखक विशेष अभिभूत होता है तो वर्णन काव्यात्मक रूप भी धारण कर लेता है। इस अर्थ में वह काव्य के तत्वों के करीब हो जाता है। यात्रा में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों और यात्रा के दौरान रहने-सहने, खाने-पीने के आर्थिक व्यय का हिसाब-किताब लगाने में वह जो तथ्यात्मक आंकड़े प्रस्तुत करता है, वहां उसके भीतर का अर्थशास्त्री मुखर हो उठता है। यात्रा में पड़ने वाली स्थितियों, घटनाओं, भाषा-भेद, संस्कृति भेद पर लगातार टिप्पणियाँ करते चलने के कारण वह एक साथ दार्शनिक, भाषाविद्, संस्कृतिविज्ञ सब कुछ हो जाता है। इसलिए यात्रा-वृत्तांत के

व्यापक परिप्रेक्ष्य को देखते हुए उसकी संपूर्ण विशेषताओं पर विचार करना संभव नहीं। यहां उसकी उन्हीं विशेषताओं की चर्चा की जाएगी जो **किन्नर देश की ओर** को समझने में सहायक हैं।

किन्नर देश की ओर राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांत 'किन्नर देश में' का प्रारंभिक अंश है जिसमें लेखक अपने गंतव्य तक पहुँचने के क्रम में की गई यात्रा का विवरण प्रस्तुत कर रहा है। यात्रा-वृत्तांत का एक अंश होने के बाद भी इसमें उनकी यात्रा-पुस्तक की समस्त विशेषताएँ मौजूद हैं। बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि यात्रा-वृत्तांत के इस अंश में उनके वृत्तांतों की सभी प्रमुख विशषताएँ समाहित हैं।

यात्रियोचित अदम्य साहस

किसी भी यात्रा में साहस की आवश्यकता होती है और यदि यात्रा ऐसे स्थलों से की गई हो जहां दुर्गम पहाड़ों की चढ़ाई-उतराई हो, परिवहन के सुकर माध्यमों का अभाव हो, जनाकीर्ण होने के कारण रास्ते में ठहरने और भोजन का समुचित प्रबंध न हो तो ऐसी यात्रा में अतिरिक्त साहस की अपेक्षा होती है। यह दुर्गम यात्रा घोड़े, खच्चर और पैदल ही से तय की गई है। ऐसे स्थान पर घोड़े-खच्चर का मिलना भी कोई आसान बात नहीं। मिल भी गए तो पूरा रास्ता सही-सलामत पार कर पाएँगे, इसका कोई भरोसा नहीं। वैसी स्थिति में यात्रा कितनी कष्टसाध्य हो सकती है उसका कुछ अनुमान अनेक स्थानों पर परेशानियों से जूझ रहे लेखक की टिप्पणियों से सहज ही हो जाता है। जैसे :

'10 मील के रास्ते में उतराई या समतल पथ पर तो कुछ नहीं मालूम हुआ, किंतु अंतिम चार मील कड़ी चढ़ाई के थे। धूप भी तेज थी, ऊपर से डायबेटिस वाले आदमी का तालू वैसे ही सदा सूखा रहता है। मत पूछिए, अंतिम चार मीलों में मेरी क्या गत बना दी।.... कष्ट असह्य था, किंतु हिम्मत छोड़ने की बात न थी, जानता ही था, बिना सराहन पहुँचे शरण नहीं।'

55 की आयु में डायाबिटिज की बीमारी से जर्जर शरीर लेकिन हिम्मत ऐसी कि लेखक की अदम्य इच्छा है कि वह बोरिया-बिस्तर ले हमेशा के लिए घुमंतू जातियों के साथ हो ले। यह साहस ही उनकी यात्राओं को अविस्मरणीय बनाता है और पाठक के मन में लेखक के प्रति सम्मान और श्रद्धा जगाता है।

हृदय की मुक्तावस्था की मादकता

यात्रा मनुष्य को मन-बुद्धि से उन्मुक्त करती है जिसमें उसके संस्कार और सामाजिक प्रतिबंध तिरोहित होने लगते हैं। यूरोप की तरह हमारा समाज अभी इतना वर्जनामुक्त और सहज नहीं हुआ है कि सौंदर्य और सुरा की बात निर्व्याज कर सके। लेकिन यह यात्रा में उपलब्ध उन्मुक्तता ही है कि लेखक इस संबंध में निस्संकोच अपने विचार प्रस्तुत करता जाता है। 'किन्नर देश में' द्राक्षा (अंगूर) की मदिरा की किस्म और चलन का पूरा समर्थन करते हुए लेखक न पी पाने की अपनी असमर्थता पर अफसोस के स्वर में कहता है :

'यदि मार्ग का अच्छा प्रबंध और खाने-रहने के अच्छे स्थान बन जाएँ, तो भाग्यवानों को वहाँ 'शिबू' उदुंबरवर्णा किन्नरी सुरा सुलभ रहेगी। सिर्फ ख्य्यामों की आवश्यकता है, साकी हज़ारों सुराही लिए यहाँ तैयार मिलेंगे। शंपेन और बरांडी को मात करने वाली किन्नरी सुरा यहाँ मौजूद हैं। मैं उसके घर में पहुँच गया हूँ, किंतु अभाग्य के लिए क्या किया जाए, पानी में 'मीन प्यासी' कहना चाहिए। इस जन्म में तो ब्रह्मा ने सुरा चखना नहीं लिखा और अगले जन्म पर विश्वास नहीं।'

ऐसी उन्मुक्त वर्जनाहीन टिप्पणियाँ वृत्तांत में बिखरी पड़ी हैं। यह कह सकना एक यात्री के लिए ही संभव है, सामान्यतया समाज इन्हें समाज-विरोधी ही करार देगा। यही नहीं, स्त्रियों के

सौंदर्य पर भी एक दो स्थानों पर इसी मुक्त भाव से राय प्रकट की गई है। मन की यह छंदमुक्तता अच्छे यात्रा-वृत्तांतों का गुण है। इस यात्रा-वृत्तांत में इसके दर्शन पग-पग पर होते हैं।

वैचारिक आग्रहों की सटीक अभिव्यक्ति

प्रत्येक लेखक के कुछ-न-कुछ वैचारिक आग्रह और दुराग्रह होते हैं। अक्सर साहित्यिक विधाओं में उनकी प्रत्यक्ष या परोक्ष अभिव्यक्ति को आपत्तिजनक माना जाता रहा है। लेकिन यात्रावृत्तांत ऐसी विधा है जिसमें वस्तुस्थिति पर सटीक टिप्पणी के कारण ये वैचारिक आग्रह एक आवश्यक हस्तक्षेप का रूप लेकर आते हैं। अपने विचारों को लेखक इस रूप में प्रकट करता है जैसे वह एक यात्री होने के कारण सहज भाव से टिप्पणी कर रहा हो। पाठक को यह वस्तुस्थिति के बयान का हिस्सा ही लगता है और असंगत नहीं मालुम होता।

हिंदी पाठक जानते हैं कि राहुल सांकृत्यायन विचारों से मार्क्सवादी लेखक हैं और उन्होंने सैद्धांतिक पुस्तकें लिखकर ही उनको प्रकट नहीं किया, अपने उपन्यासों, दर्शन-ग्रंथों, इतिहास ग्रंथों में भी उन्हें छिपाया नहीं है। लेकिन उनके विचारों का पाठक के साथ पूर्ण तादात्म्य देखना हो तो वह उनके यात्रा-वृत्तांतों में ही मिलेगा। इस वृत्तांत अंश में लेखक प्रारंभ से अंत तक ऐसी टिप्पणियाँ करता चलता है जो घटनाओं के प्रसंग में होते हुए भी आग्रहों में वैचारिक हैं। कुछेक उदाहरण लें तो सराहन नाम के इतिहास पर पंडित प्रवर मूर्खजपाटानंद के पोंगावाद पर टिप्पणी, भीमकाली के मठ में रामचंद्र जी के खजाने का प्रसंग, सरकारी बंगलों को यात्री निवासों में बदल देने की सिफारिश, ब्राह्मणों और देवताओं पर कटाक्ष, किन्नौर के अन्य लोगों की दशा पर सहृदय टिप्पणियाँ आदि। यही नहीं, अतीत में राजाओं के व्यवहार, अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की मार और वर्तमान में सरकारी तंत्र की जड़ता और संवेदनाहीनता में भी ये वैचारिक आग्रह स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

1) 'किंतु सौभाग्य से सरकारी कायदे-कानून जैसे निष्ठुर होते हैं, वैसे उसके यह साधारण सेवक नहीं है। समझ में नहीं आता, दस पाँच दिन छोड़कर इन बहुधन-सम्पादित बंगलों को साल भर बंद रखने से सरकार ने क्या लाभ समझा है? सरकारी अफसरों को पहले स्थान मिले ठीक, आज्ञापत्र पाने वालों को भी पहिले स्थान दिया जाये, किंतु खाली बंगले को साधारण यात्री के लिए क्यों नहीं खोल दिया जाये?'

2) 'मैं जानता था राजा के विराज होने पर न जाने कितने घोड़े और साईस ही बेमालिक नहीं हुए हैं, बल्कि भीमकाली के प्रताप से जीने वाले सारे रावी गाँव के ब्राह्मणों में भी कुहराम मचा हुआ है, सरकार ने देवी के अस्सी हजार खर्च को घटाकर पन्द्रह हजार से कम कर दिया है। ब्राह्मण-देवता जरूर घर पर निराहार पुरश्चरण करते होंगे। उनके लिए इससे अच्छा तो फिरंगियों का राज्य था। अच्छा देवताओ, कोई पर्वा नहीं, तुम्हारे पास कपड़े में लिपटी वह सतयुग की पोथी है। सुनते हैं उसमें सोना नहीं पारस बनाने की विधि लिखी है।'

गहन ऐतिहासिक और भाषा बोध

एक सामान्य यात्री जहाँ स्थानों को दृश्य-वस्तु मानकर उनका आकलन करता है वहीं राहुल जैसा यात्री उसके ऐतिहासिक और भाषागत संदर्भ में जाता है। इस तरह यह वर्तमान रूप एक विशेष अर्थबोध से आलोकित हो उठता है। इसके लिए महापंडित राहुल सांकृत्यायन जैसी तैयारी भला और किस लेखक में होगी। उनके लिए तो हर स्थल का इतिहास, भाषा-मूल हाथ का मैल है जिसका कदम-कदम पर वे उपयोग करते हैं और अपने संदर्भों से पाठक को आश्चर्यचकित कर देते हैं। यात्रा में पड़े एक मामूली से गांव सराहन के संबंध में उनका यह विवरण देखने से बात स्पष्ट हो जाएगी :

'सराहन का सतयुग का इतिहास भी ढूंढ़ने पर मिल सकता है। द्वापर के अंत में जब श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंठ द्वारिका में वास कर रहे थे, तो इसका नाम शोणितपुर था। यही प्रचंड-भुजदंड वाणासुर की राजधानी थी।.... प्राचीन नाम शोणितपुर और वर्तमान नाम सराहन के महत्व क बारे में इससे बढ़कर और क्या कहा जा सकता है? और प्रमाण चाहिए, तो वह स्वयं सराहन नाम में दिया है जो शोणितपुर से ही बिगड़कर बना है।'

लेकिन गाँव के नाम को ऐसे पौराणिक संदर्भों से जोड़ने की प्रवृत्ति के प्रति राहुल जी सजग हैं। इसलिए इस मनगढंत इतिहास की पोलपट्टी भी वे साथ-साथ खोलते जाते हैं :

'किस भाषा तत्व या व्याकरण के अनुसार, यहाँ के पंडित मूर्खजपाटानंद से पूछ लीजिए, जो यहां से थोड़ी सी नीचे के रावी गाँव में सतयुग की पोथी लेकर बैठे हुए हैं। इस पोथी को न इनकी हजार पीढ़ी पढ़ सकी हैं और न वह खुद। बल्कि वह पोथी तह पर तह कपड़ों से लिपटी सारे कलियुग में भी न खुली और यदि रामजी की इच्छा होगी, तो आग-वाग लगने पर कोयला बनकर ही खुलेगी।'

राहुल के यात्रा-वृत्तांतों की यह अपनी विशेषता है कि वे अपनी यात्राओं में दृश्य और अनुभवगम्य के वर्णन के साथ मानव-ज्ञान के समस्त स्रोतों से प्राप्त शोधों का उपयोग करते चलते हैं। इस नए ज्ञान-आलोक में स्थलों और जातियों का एकदम नया रूप पाठक को उपलब्ध होता है। इस प्रकार वे अपनी यात्रा में दृश्यमान से अनुभव और सामग्री ग्रहण ही नहीं करते बल्कि उसे साथ-साथ एक नया विशिष्ट अर्थ देते चलते हैं।

'पास के कटे खेत में अपनी रावटी.डाले ग्यारह खम्पा पड़े थे। खम् तिब्बत में चीन की सीमा पर एक प्रदेश है। शायद इनके पूर्वज़ों में कुछ किसी समय खम् से खानाबदोशी करने इधर आए हों, किंतु अब यह न भाषा ही मे खम् के हैं, न वेशभूषा ही में। शायद इसीलिए इन्हें सिर्फ खम्पा (खम्बाला) न कहकर ग्यगर (भारत)-खम्पा कहते हैं।'

24.4 यात्रा-वृतांत की भाषा-शैली

यात्रा वृतांत जितना अपने कथ्य में नवीन होता है, उतना ही अपने रूप विधान में भी। वैसे तो प्रत्येक विधा दूसरी साहित्यिक विधाओं से कुछ-न-कुछ लेती ही है। लेकिन फिर भी वह उसे अपने अंतर्गत आत्मसात कर लेती है। लेकिन यात्रा वृतांत इतर विधा के तत्वों का उपयोग अत्यंत प्रत्यक्ष और मुखर रूप में करती है। इसीलिए उसका आधार तो यात्रा है लेकिन उसके अभिव्यक्ति के तमाम साधन दूसरी विधाओं के श्रेष्ठ गुणों से निर्मित होते हैं। उसका इस रूप में अध्ययन अत्यंत दिलचस्प और मनोरंजक है। यात्रा वृतांत की शैलीगत विशिष्टता में औपन्यासिक कथा तत्व, अतीत की यादें और वर्तमान का आख्यान और ज्ञान कोश का विवरण सभी कुछ पाया जा सकता है। राहुल सांकृत्यायन के यात्रा वृतांतों में तो ये विशेषताएँ खासतौर पर देखी जा सकती हैं।

राहुल के अन्य यात्रा-वृतातों की तरह यहां भी वर्तमान के वर्णन की शैली अपनाई गई है। उसे पढ़ते हुए यह लगता है कि हम भी उनके साथ-साथ यात्रा कर रहे हैं। क्योंकि यह वर्णन पहाड़ी यात्रा का है इसलिए उसमें शैली का प्रवाह भी पहाड़ी नदी जैसा ही है। वह थोड़े समय के लिए समतल पर मंद्र गति से चलती अवश्य है जब लेखक किसी घटना पर ठहरकर टिप्पणी करता है। लेकिन जैसे नदी मैदान की ओर पहाड़ से द्रुत गति से बहती है उनका वर्णन भी बड़ी तेजी से बढ़ता है। अनेक बार तो वह एक-दो वाक्यों में ही मीलों का सफर तय कर जाते हैं। लेखक को यह अच्छी तरह मालूम है कि कहां ठहकर इत्मीनान से बात करनी है और कहां तेज़ी से मौन रहकर गुज़र जाना है।

'बंगला बंद था। कोई मेला हो और पहाड़ी जवान वहाँ से अनुपस्थित हो, यह क्या कोई होनी बात है? मालूम हुआ - चौकीदार साहेब वहाँ गए हुए हैं, आज रात को शायद ही लौटें। मेला तो होता है किसी बड़े शक्तिशाली देवता का ही। किंतु उसमें डटकर शराब पीना, नाचना-गाना सबसे आवश्यक चीज़ है। आस-पास की सारी तरूण-सौंदर्य-राशि जहाँ राशिभूत होती है, फिर 'वहां नहीं यही बैकुन्ठा' मानने वाले क्यों पिछड़ेंगे।'

यही कारण है कि उसके पास अनावश्यक विवरणों के लिए समय नहीं है। थोड़े से समय में लंबी यात्रा पूरी करनी है और गंतव्य तक पहुंचना है। उदाहरण के लिए रामपुर से गौरा तक की नौ मील की यात्रा केवल दो वाक्यों में पूरी कर ली गई। इस तरह यह वृत्तांत अनावश्यक पुनरावृत्तियों से बचता हुआ यात्रा की गति के साथ ही अग्रसर होता जाता है।

इस वृत्तांत में यात्रा-वृत्तांतों में अपनाई जाने वाली प्रायः सभी शैलियों का उपयोग लेखक ने किया है। जहां उसे रूककर कोई कथा कहनी होती है, वहां लेखक कथा-तत्वों का प्रयोग करता है। उदाहरण क लिए वृत्तांत के प्रारंभ में ही रियासत की रानी मित्र की विधवा बहिन के यहां आतिथ्य ग्रहण करने की कथा, फिर सराहन की कथा आदि। जहां किसी प्रसंग को दीप्त करने क लिए संस्मरण का सहारा लेना पड़ता है, वहां लेखक अपने पूर्व के अनुभवों में जाता है। एक दो स्थानों पर उसे डायरी का रूप देने क लिए तिथि, सन, समय और वातावरण का परिचय भी दि गया है। 'मिति 18 मई, दिन मंगल, ईसवी साके 1948 का बाह्म मूहूर्त आया।'

यह कहने की अलग से आवश्यकता नहीं है कि राहुल यात्रा के पूरे पथ का वर्णन चित्रात्मक शैली में करते हैं।

'अब चढ़ाई थी। धूप सीधे बायें से पड़ रही थी जिससे आड़ करने के लिए वृक्षों की छाया नहीं थी, पहाड़ वनस्पति विहीन न था। चढ़ाई नरम इसीलिए मालूम हो रही थी कि हम दूसरे की पीठ पर थे। चढ़ाई दो मील रही होगी या ज्यादा, उसे पूरा करने के बाद हम अवश्य देवदारूओं के सुंदर वन में थे। सारे रास्ते का वह सुंदरतम भाग था। सारा पर्वतगात्र तुंग सरल सदा हरित देवताओं से ढँका था। बीच-बीच में कुछ गाँव भी मिले। एक सड़क से नीचे पास ही था जिसमें मंदिर था।'

किन्नर देश की ओर की भाषागत विशेषता पर भी यहाँ संक्षिप्त चर्चा करना उपयुक्त होगा। माहपंडित राहुल सांकृत्यायन केवल रचनाकार ही न थे, प्राचीन भारतीय भाषाओं, साहित्य और दर्शन के भी विद्वान थे। यही कारण है कि उनकी भाषा पर इसका प्रभाव साफ तौर पर देखा जा सकता है। उनकी भाषा में एक तरह की बोलचाल की रवानगी है, लेकिन बीच-बीच में ऐसे शब्द और पद आ जाते हैं जो आम पाठक के लिए दुरुह साबित हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, 'कादम्बरी में वर्णित इंद्रायुध' का उल्लेख, या 'किन्नर देश की स्वयं प्रसूता उदुंवरवर्णा द्राक्षी मदिरा'। वैसे उन्हें किसी प्रकार के शब्दो से परहेज नहीं है। हर तरह के शब्दों का वे यथा स्थान उपयोग करते हैं।

यात्रा-वृत्तांतों की सभी सामान्य कथ्यगत और शैलीगत विशेषताओं से संपन्न होते हुए भी राहुल जी के वृत्तांतों की कुछ सीमाओं का उल्लेख आवश्यक है। संभव है एक पेशेवर यात्री की दृष्टि से ये सामान्य बातें हों लेकिन पाठक की दृष्टि से ये बातें यात्रा की प्रेरणा को आहत करने वाली और वृत्तांत के प्रभाव को आतंककारी बना देने वाली हैं।

उनकी सबसे बड़ी खामी तो यही है कि उनका यात्रा-वृत्तांत इतनी अधिक सामग्री को समाहित किए रहता है कि उसके कारण यात्रा का भौतिक पक्ष अत्यंत प्रधान हो उठता है और उसका साहित्यिक और कला-पक्ष गौण हो जाता है। संभव है ऐसा उनकी अनगिनत यात्राओं की व्यस्तताओं के बीच साहित्यिक सजाव-संवार के लिए समयाभाव से हुआ हो। किंतु पाठक

यात्रा-वृत्तांत के साहित्यिक पक्ष का रसास्वादन करने की अपेक्षा रखते हुए अनवरत विस्तार के बीहड़ में खो जाता है।

आपने भी इस वृत्तांत को पढ़ते हुए यह अनुभव किया होगा कि लेखक के पास अनुभव और ज्ञान का विशाल भंडार है जिसका वह मुक्त उपयोग वृत्तांत के दौरान करता चलता है। पाठक को उस सबको साथ-साथ आत्मसात करते जाने में कठिनाई होती है। इसलिए इसका प्रभाव उस पर आनंददायक न रहकर आतंक के रूप में पड़ता है। यात्रा-वृत्तांत जैसी मनोरंजक विधा के लिए यह कोई वरेण्य बात नहीं कि वह पाठक के मन-बुद्धि पर अतिरिक्त बोझ डाले।

इसके बावजूद प्रस्तुत यात्रा-वृत्तांत पठनीय है और पाठक के अनुभव-ज्ञान को समृद्ध करता है।

24.5 सारांश

किन्नर देश की ओर यात्रा-वृत्तांत का विश्लेषण मूल्यांकन करने पर जो बातें स्पष्ट होती हैं, वे इस प्रकार हैं :

आधुनिक हिंदी में यात्रा वृतांतों का प्रारंभ भारतेंदु काल में हुआ। तबसे लगातार यात्रा वृतांत का विकास होता गया और उसकी एक अच्छी खासी परंपरा बन गई। इसमें राहुल सांकृत्यायन का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यात्रा-वृत्तांत में लेखक राहुल सांकृत्यायन की छवि एक ऐसे आदर्श यात्री के रूप में उभरती है जिसमें यात्रा की तमाम बाधाओं का सामना करने का अदम्य साहस है और अनंत जिज्ञासा है। यात्रा के दौरान अपनी टिप्पणियों में वे अत्यंत उन्मुक्त और उदारचित व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। उनके वैचारिक आग्रह घटनाओं और परिस्थितियों में हस्तक्षेप के क्रम में अत्यंत सहज और सटीक बनकर प्रकट होते हैं। उनके वृत्तांत में इतिहास, वर्तमान, भाषा-बोध की चेतना दिखाई पड़ती है।

राहुल जी ने यात्रा-वृत्तांत के लिए अपनाई जाने वाली सभी शैलियों का प्रयोग किया है। औपन्यासिक कथा तत्व, अतीत का संस्मरणात्मक बयान, डायरी शैली और चित्रात्मकता प्रमुख हैं। राहुल जी की भाषा में विद्वता और रचनात्मकता दोनों के दर्शन होते हैं।

यात्रा-वृत्तांत की कुछ सीमाएं भी पाठक के पक्ष से सामने आती हैं जिनमें घटनाओं का आधिक्य, ज्ञान के उपयोग का बाहुल्य और साहित्यिक पक्ष का गौण हो जाना है।

अभ्यास

1. राहुल सांकृत्यायन के यात्रावृतांत **किन्नर देश की ओर** की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
2. **किन्नर देश की ओर** की शैली और भाषागत विशेषताओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए।
3. यात्रा वृतांत की विशिष्टता बताते हुए इस साहित्यिक विधा में राहुलजी के योगदान का महत्व उजागर कीजिए।

इकाई 25 रिपोर्ताज़ : अदम्य जीवन

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 विधा के रूप में रिपोर्ताज
25.3 रिपोर्ताज की परंपरा
25.4 तूफानों के बीच : एक विहंगम दृष्टि
25.5 **अदम्य जीवन** : मूल संवेदना
25.6 **अदम्य जीवन** : शिल्पगत विशेषताएँ
25.7 **अदम्य जीवन** : मूल्यांकन
25.8 सारांश

25.0 उद्देश्य

एम.ए. हिंदी के बीज पाठ्यक्रम-4 'नाटक और अन्य गद्य विधाएँ' के छठे और अंतिम खंड की यह दूसरी इकाई है। पाठ्यक्रम की यह पच्चीसवीं इकाई हैं। इस इकाई में हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार स्व. रांगेय राघव द्वारा लिखित रिपोर्ताज **अदम्य जीवन** पर विचार किया गया है।

रिपोर्ताज यद्यपि पत्रकारिता से संबंधित विधा है लेकिन इसका एक रचनात्मक विधा के रूप में भी प्रयोग होता रहा है। इकाई में आप रिपोर्ताज की विशिष्टताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

हिंदी में रिपोर्ताज की विधा के आरंभ और विकास की जानकारी प्राप्त करके आप रांगेय राघव द्वारा लिखे गए रिपोर्ताजों की पृष्ठभूमि और विशेषताओं को समझ सकेंगे।

रांगेय राघव के रिपोर्ताज **अदम्य जीवन** की सामान्य विशेषताओं को समझना भी आवश्यक है, जिनकी चर्चा इकाई में की गई है और उसके बाद **अदम्य जीवन** की संवेदनागत और वस्तुगत तथा शिल्पगत विशेषताओं का विवेचन किया गया है। इस प्रकार इकाई के अध्ययन से आपको रिपोर्ताज विधा और पठित रिपोर्ताज को समझने में मदद मिलेगी।

25.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम.ए. (हिंदी) पाठ्यक्रम-4 के छठे खंड की दूसरी इकाई है। इस इकाई से पूर्व आप राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित यात्रा वृतांत **किन्नर देश की ओर** से संबंधित इकाई का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई का संबंध रांगेय राघव के रिपोर्ताज **अदम्य जीवन** से है। इकाई के आरंभ में रिपोर्ताज विधा पर विचार किया गया है। रिपोर्ताज के स्वरूप निर्धारण में किन-किन तत्वों की क्या भूमिका रहती है और आलोचकों ने उनका मूल्यांकन किस रूप में किया है। इकाई में रिपोर्ताज की परंपरा का विकास भी दर्शाया गया है। इकाई के अगले भाग में रांगेय राघव की रिपोर्ताज पुस्तक 'तूफानों के बीच' पर विचार किया गया है। **अदम्य जीवन** इसी संग्रह में संकलित है। अतः पूरी कृति के संदर्भ में लेखक की रचना दृष्टि और उसके उद्देश्य आदि पर विचार किया गया है जो **अदम्य जीवन** के मूल्यांकन में हमारे लिए सहायक है। अगले भाग में **अदम्य जीवन** के संवदेनात्मक पक्ष पर विचार किया गया है। **अदम्य जीवन** में चित्रित यथार्थ, युगीन समस्याएँ तथा मानव की संघर्षशील जिजीविषा में लेखक की अटूट आस्था को रिपोर्ताज से उद्धृत विभिन्न पंक्तियों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

अदम्य जीवन की शिल्पगत विशेषताओं पर भी इकाई में विचार किया गया है। शिल्प की दृष्टि से इस रिपोर्ताज में क्या विशिष्ट है। परिवेश एवं भाषा का कैसा अनूठा प्रयोग यहाँ हुआ है। **अदम्य जीवन** में शिल्प के इसी वैशिष्ट्य को रेखांकित किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आपको उक्त रिपोर्ताज को समझने में मदद मिलेगी।

25.2 विधा के रूप में रिपोर्ताज

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल गद्य के विकास का काल है। इस युग में न केवल पारंपरिक गद्य विधाओं, जैसे कि - उपन्यास, कहानी, नाटक आदि का विकास हुआ बल्कि कुछ नवीन विधाओं का भी जन्म हुआ जिनमें जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, यात्रा-वृतांत आदि प्रमुख हैं। जीवन और साहित्य के गहरे संबंधों से निःसृत रिपोर्ताज आधुनिक जीवन और साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। एक ओर इसका लेखक वैज्ञानिक युग की तीव्रगामी वास्तविकता के साक्षात्कार से आधुनिक व्यक्ति की जिज्ञासा वृत्ति को शांत करता है। दूसरी ओर जब वह मनुष्य और उसके दर्द से रिश्ता जोड़ता है तो सतही वास्तविकता और तथ्यपरकता का स्थान गहन अनुभूति ले लेती है। इसी अनुभूति के सहारे रचनाकार मानव मूल्यों और संबंधों की गहरी पड़ताल करता है। घटनात्मकता और अनुभूति के इसी समंजन से विकसित साहित्य रूप है - रिपोर्ताज।

रिपोर्ताज अंग्रेज़ी शब्द रिपोर्ट का समानार्थी फ्रांसीसी शब्द है जो इसी रूप में हिंदी में भी ग्रहण किया गया। 'रिपोर्ट' होने के नाते घटना का यथातथ्य वर्णन रिपोर्ताज का प्रमुख लक्षण है लेकिन जैसा कि समीक्षकों ने बल दिया और 'हिंदी साहित्य कोश' में इसे परिभाषित करते हुए लिखा गया :

'रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं।'

तात्पर्य यह है कि रिपोर्ताज ऐसी 'रिपोर्ट' है जिसमें साहित्यिकता एवं कलात्मकता का समावेश हो। अब सवाल यह है कि ऐसे कौन से तत्व हैं जो एक रिपोर्ट को, घटना के वर्णन को श्रेष्ठ, कलात्मक, साहित्य रूप बनाते हैं? अधिकांश साहित्यकारों का मानना है कि रिपोर्ताज में भावना का आवेग होता है, वह आवेग जो मनुष्य के संघर्ष को देखकर जन्म लेता है।

अतः रिपोर्ताज के केंद्र में जो घटना या तथ्य रहता है उसका संबंध मनुष्य और उसके संघर्ष से होता है।

'रिपोर्ताज का स्वरूप' घटनापरक होते हुए भी सृजनात्मक एवं साहित्यिक है। घटना के यथातथ्य विवरण पर बल देते हुए भी यहां 'तथ्य' को तराशता और आकार देता है मानव सत्य। रिपोर्ताज में घटना का सतही रूप नहीं रहता, जो घट रहा है मात्र उतना ही सच नहीं है। घटना यहां एक 'संकुल प्रक्रिया' है (विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, जलते और उबलते प्रश्न, 233)। युग संघर्ष, युग चेतना, मनुष्य और उसका समाज, ह्रास-विकास की तमाम शक्तियाँ उसके भीतर सन्निहित रहती है।

रिपोर्ताज में जहाँ मानवीय संवेदनाएँ और मानवीय सरोकार इतने महत्वपूर्ण हैं वहीं लेखक के दृष्टिकोण का भी महत्वपूर्ण योगदान है। साहित्यकार अपने रचना कर्म का निर्वाह सजग युग द्रष्टा और युग स्रष्टा होकर करता है। घटना की सतह के भीतर देख पाने की रचनाकार की दृष्टि जितनी गहन होगी, उतनी ही उसकी रचना अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक होगी। वस्तुतः रिपोर्ताज में लेखक का दृष्टिकोण ही वस्तुगत सत्य को प्रभावी रूप प्रदान करता है। बाबू गुलाबराय ने इसे ही 'लेखक का उत्साह' कहा है। रिपोर्ताज के विषय में वे लिखते हैं :

'रिपोर्ट की भाँति यह घटना या घटनाओं का वर्णन तो अवश्य होता है किंतु उसमें लेखक के हृदय का निजी उत्साह रहता है जो वस्तुगत सत्य पर बिना किसी प्रकार का आवरण डाले उसको प्रभावमय बना देता है।' (काव्य के रूप)

यहाँ इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि लेखक का दृष्टिकोण इतना हावी नहीं होना चाहिए कि वह मूल कथ्य को ही आच्छादित कर ले। 'लेखक के उत्साह' की व्याख्या करते हुए समीक्षकों ने उसे लेखक की पक्षधरता का पर्याय माना है। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में :

'.... परिप्रेक्ष्य के प्रति पक्षधरता अथवा प्रतिबद्धता के बिना रिपोर्ताज में लेखक का उत्साह व्यक्त नहीं हो सकता।' (जलते उबलते प्रश्न)

डॉ. रामविलास शर्मा भी मानते हैं कि 'कल्पना के सहारे रिपोर्ताज नहीं लिखा जा सकता ... रिपोर्ताज लिखने के लिए जनता से सच्चा प्रेम होना चाहिए।' (कथा विवेचना और गद्य शिल्प)

इस प्रकार रिपोर्ताज में लेखक अपने विचारों, भावों एवं अनुभूतियों के स्पर्श से घटना के वर्णन को प्रभविष्णुता प्रदान करता है।

रिपोर्ताज का संबंध वर्तमान से होता है। इसलिए कुछ समीक्षक तात्कालिकता को रिपोर्ताज का आवश्यक तत्व मानते हैं। पत्रकारिता से जुड़े होने के कारण रिपोर्ताज किसी भी घटना की तात्कालिक रिपोर्ट होती है या फिर किसी भी घटना पर लेखक की तीव्र भावात्मक प्रतिक्रिया। इसी संदर्भ में कहा जाता है कि रिपोर्ताज यथार्थ पर अवस्थित विधा है और यही तत्व उसे जीवंतता प्रदान करता है लेकिन इसका वर्तमान, भूत और भविष्य से कटा हुआ नहीं होता। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में :

'उसका संबंध सिर्फ वर्तमान से होता है किंतु उसका लेखक वर्तमान के उस बिंदु पर होता है, जिसमें भूतकालीन मूल्य और भावनाएँ रहती हैं और भविष्य के प्रति उत्कट लालसा भी।' (जलते और उबलते प्रश्न)

इस प्रकार, रिपोर्ताज एक संश्लिष्ट विधा है जिसमें जीवन और इतिहास के अनेक धरातल किसी एक घटना, एक समय बिंदु पर केंद्रित होकर उसे उद्‌भासित करते हैं।

रिपोर्ताज के लेखक का उद्देश्य अपने वर्ण्य विषय को एक सजीव अनुभव के रूप में प्रस्तुत करना होता है। परिणामतः रिपोर्ताज का प्रस्तुतीकरण भी उसके लेखक से अतिरिक्त रचना सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। रिपोर्ताज में आँखों देखी घटना का वर्णन होता है लेकिन कभी-कभी जब कानों सुनी घटना पर रिपोर्ताज लिखा जाता है तब यह भी जरूरी होता है कि लेखक को घटना के इतिहास और परिवेश का प्रत्यक्ष अनुभव हो जिसके बल पर वह मनसा साक्षात्कार कर घटना को शब्द चित्र के रूप में सजीव कर दे। ... परिवेश के प्रति भी उसमें एक गहरा रागात्मक लगाव होता है। प्रामाणिकता के लिए वह स्थिति विशेष को उसकी स्थानगत व कालगत विशिष्टताओं के साथ उभारता है। उसका परिवेश चित्रण एक सहज आंतरिकता से संपन्न होता है। पूरे परिवेश को लेखक रचना के भीतर इस रूप में अनुस्यूत करता है कि रिपोर्ताज में रोचकता व सरसता के गुण स्वतः ही आ जाते हैं।

किसी भी रचना को सजीव बनाने में जीवंत भाषा की सक्रिय भूमिका रहती है। रिपोर्ताज घटनाओं का शब्द चित्र है। अतः उसकी भाषा सजीव, मर्मस्पर्शी एव संवेदना जागृत करने वाली होती है। शब्दों की विशिष्ट गति व वेग घटना का पूर्ण बिम्ब प्रस्तुत कर देते हैं। रिपोर्ताज की भाषा अपनी प्रवाह पूर्णता में घटना के अतीत को अनावृत करती, वर्तमान का साक्षात्कार

कराती और भविष्य की ओर संकेत करते हुए अनेक भंगिमाएँ धारण करती है तथा रचना की प्राणशक्ति बनकर पूरे अनुभव को सजीव एवं प्रत्यक्ष कर देती है।

सारतः कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज आधुनिक हिंदी गद्य की एक नवीन विधा है। इसके केंद्र में 'घटना' का वह स्वरूप रहता है जो व्यापक मानवीय सत्य से जुड़कर चिरस्थायी साहित्य रूप में बदल जाता है। 'तथ्य' को 'सत्य' में परिवर्तित करने में लेखक के दृष्टिकोण का विशेष महत्व है। लेखक का दृष्टिकोण अतिवाद से परे लेखक की पक्षधरता का परिचायक है। वर्तमान पर केंद्रित होते हुए भी रिपोर्ताज घटना के इतिहास और उसके भविष्य-निर्देशों से जुड़ा रहता है। अपनी विशिष्ट रचना सामर्थ्य के बल पर रिपोर्ताज का लेखक अपने वर्णन और विवरणों में ऐसी प्रभाव क्षमता उत्पन्न करता हैं कि पूरी घटना एक जीवंत अनुभव में परिवर्तित हो जाती है।

25.3 रिपोर्ताज की परंपरा

विधा के रूप में 'रिपोर्ताज' का विकास द्वितीय विश्वयुद्ध से संबद्ध है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय साहित्यकारों ने युद्धक्षेत्रों से महायुद्ध की विभीषिका का ऐसा जीवंत वर्णन प्रस्तुत किया कि पूर्व प्रचलित 'रिपोर्ट' की विधागत सीमाओं को तोड़कर 'रिपोर्ताज' नामक साहित्यिक विधा का जन्म हुआ। इन लेखकों ने एक ओर, मनुष्य की मानवीयता को झकझोरा तो दूसरी ओर राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत अपने देश के साहसी योद्धाओं के पराक्रम एवं बलिदान का आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत किया।

हिंदी में रिपोर्ताज की परंपरा का प्रारंभ दिसम्बर 1938 में 'रूपाभ' में प्रकाशित शिवदान सिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मीपुरा' से माना जाता है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का नाम भी उल्लेखनीय है। वे बहुत पहले से रिपोर्ताज लिख रहे थे जिनका संकलन 1953 में 'क्षण बोले कण मुस्काए' नाम से प्रकाशित हुआ। वस्तुतः इस विधा का महत्व समझकर उसके विकास का मार्ग प्रशस्त करने का श्रेय श्री शिवदानसिंह चौहान को ही है। 'हंस' पत्रिका के तत्कालीन संपादक के रूप में उन्होंने 'अपना देश' नामक स्थायी स्तंभ प्रारंभ किया जिसमें प्रतिमास एक रिपोर्ताज प्रकाशित होता था। शिवदान सिंह चौहान द्वारा रचित रिपोर्ताज 'मौत के खिलाफ़ जिंदगी की लड़ाई' - इस स्तंभ की पहली कड़ी के रूप में प्रकाशित हुआ है। 'हंस' पत्रिका में ही 'समाचार और विचार' नाम से एक और स्तंभ निकलता था, इसमें प्रस्तुत सामग्री भी रिपोर्ताज की ही होती थी।

1944 में ही 'विशाल भारत' में रांगेय राघव ने बंगाल के अकाल पर **अदम्य जीवन** शीर्षक से स्थायी महत्व के रिपोर्ताज लिखे जो बाद में 'तूफानों की बीच' नाम से संकलित किए गए। इस युग में प्रकाशचन्द्र गुप्त तथा अमृतराय आदि लेखक भी इस विधा में सक्रिय योगदान दे रहे थे लेकिन इस क्षेत्र में रांगेय राघव की अद्वितीयता तथा 'तूफानों के बीच' के ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार करते हुए अमृतराय ने लिखा :

"जहाँ तक मैं जानता हूँ रांगेय राघव के उन्हीं रिपोर्ताजों से हिंदी में रिपोर्ताज लिखने का चलन शुरू हुआ। मैंने और दूसरों ने रिपोर्ताज लिखे, लेकिन जो बात रांगेय राघव के लिखने में थी वह किसी को नसीब न हुई।" (रांगेय राघव का रचना संसार)

स्वातंत्र्योत्तर युग में इस विधा की ओर और भी लेखकों का रूझान हुआ। रामकुमार वर्मा कृत 'यूरोप के स्केच' में संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज के मिले जुले तत्व दिखाई पड़ते हैं। लक्ष्मीचंद्र जैन के रिपोर्ताज संग्रहों - 'कांगज की किश्तियाँ' तथा 'नये रंग नये ढंग' में दृष्टि की सूक्ष्मता तथा गहरे अध्ययन की पृष्ठभूमि दिखाई पड़ती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थितियों पर अमृतराय ने 'हंस' में जो रिपोर्ताज लिखे वे सब 'लाल धरती' शीर्षक से संकलित हुए।

युद्ध की पृष्ठभूमि पर बहुत से रिपोर्ताज लिखे गए। 1966 में भारत-पाकिस्तान युद्ध की आधारभूमि पर शिवसागर मिश्र ने 'लड़ेंगे हजार साल' शीर्षक से रिपोर्ताज लिखे। धर्मयुग पत्रिका में 1972 में धर्मवीर भारती के रिपोर्ताज 'ब्रह्मपुत्र की मोर्चाबंदी' और 'दानव की वृत्ति' नाम से आए, जो बाद में 'युद्ध क्षेत्रे मुक्त क्षेत्रे' शीर्षक से प्रकाशित हुए।

फणीश्वरनाथ रेणु के निबंध संग्रह 'श्रुत अश्रुत पूर्व' में 'एकलव्य के नोट्स' तथा 'नेपाल मेरीसानोआमा' नामक रिपोर्ताज संग्रहीत है। रेणु के अन्य प्रमुख रिपोर्ताज संग्रह हैं - 'ऋणजल धनजल', 'नेपाली क्रांतिकथा'। रेणु के रिपोर्ताजों में भावना की दुनिया का एक नया संदर्भ है, जिसमें अनेक क्रांतिकथाएँ उभर कर आई हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के गाँवों के दुःख दर्द की अभिव्यक्ति है विवेकीराय के रिपोर्ताज : 'जुलुस रूका है'। मणि मधुकर के रिपोर्ताज संग्रह 'पिछला पहाड़ा' तथा 'सूखे सरोवर का भूगोल' रेगिस्तान के जीवन से संबद्ध हैं। इनमें मरुभूमि के जीवन संघर्षों को लेखक ने मानवीय सहानुभूति के साथ उभारा है। अज्ञेय के संग्रह 'देश की मिट्टी बुलाती है' में भी कुछ श्रेष्ठ रिपोर्ताज संकलित हैं जिनमं 'जापानी युद्धबंदियों के साथ' का स्थायी महत्व है।

इस प्रकार रिपोर्ताज विधा को विकसित करने में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्यकारों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। इन्हीं के सतत प्रयासों से रिपोर्ताज अपने वैशिष्ट्य को स्थापित करते हुए, एक साहित्य विधा के रूप में अपनी अलग पहचान बना सका है।

25.4 तूफानों के बीच : एक विहंगम दृष्टि

हिंदी रिपोर्ताज साहित्य में रांगेय राघव की रचना 'तूफानों के बीच' का स्थायी महत्व है। रिपोर्ताज विधा की दृष्टि से हिंदी में यह पहला सशक्त प्रयास है। आलोचकों ने भी इसके मौलिक व अविस्मरणीय योगदान को स्वीकार किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1942 में भयंकर अकाल पड़ा। बंगाल की शस्य श्यामला भूमि - भूख, रोग और मृत्यु के संत्रास से कराह उठी लेकिन यह अकाल प्राकृतिक विपदा भर नहीं था, साम्राज्यवादी ताकतों की शोषणपरक नीतियों का परिणाम था। 'तूफानों के बीच ' की भूमिका में रांगेय राघव लिखते हैं :

"बंगाल का अकाल मानवता के इतिहास का बहुत बड़ा कलंक है। शायद क्लियापैट्रा भी धन के वैभव और साम्राज्य की लिप्सा में अपने गुलामों को इतना भीषण दुःख नहीं दे सकी जितना आज एक साम्राज्य और अपने ही देश के पूंजीवाद ने बंगाल के करोडों आदमी, औरतों और बच्चों को भूखा मार कर दिया है।" (रांगेय राघव ग्रंथावली, भाग-8)

बंगाल के इस भीषण अकाल से लड़ने के लिए अपना कर्त्तव्य समझकर डॉ. कुंटे के नेतृत्व में एक मेडिकल जत्था आगरा से बंगाल गया। डॉ. रांगेय राघव एक लेखक के रूप में इस जत्थे के साथ गए। वहां लेखक ने जो कुछ देखा उसी का मार्मिक विवरण है - 'तूफानों के बीच'।

रांगेय राघव जनचेतना के सजग रचनाकार हैं। मनुष्य और उसका मनुष्यत्व उनके चिंतन के केंद्र में है। मानवीय मूल्यों के पक्षधर लेखक के रूप में मनुष्य की सार्थकता उसके समाज-संवेद्य होने में ही मानते हैं। इसी विचारधारा को प्रमाणित करने वाली कृति है 'तूफानों के बीच।' बंगाल का अकाल लेखक के लिए मात्र घटना और आंकड़ों तक सीमित नहीं था। उसने उन लोगों के साथ उस विभीषिका के संत्रास और पीड़ा को झेला था। वह द्रष्टा भी था और भोक्ता भी। उनकी पीड़ा का अनुभव करते हुए उसने लिखा - "उनके चेहरों पर जैसे दुख की खुली किताब थी जो भी इंसानियत का थोड़ा बहुत मादा रखता है वह आसानी से पढ़ सकता है उसको।" रांगेय राघव में निश्चय ही वह 'इंसानियत' थी। 'तूफानों के बीच' के रचनाकार में

वह अनुभूति है जो भूख की पीड़ा का अनुभव कर सकती है। उनमें वह वेदना है जो जीवन को देखने की एक नई दृष्टि देती है। उनमें वह विवेक है जो भूख, रोग और मृत्यु के बीच ऐसा शब्द चित्र खींचता है जो करूणा एवं यथार्थ का जीवंत दस्तावेज़ बन गया है।

'तूफानों के बीच' अकाल के उस यथार्थ का रूप प्रस्तुत करता है जहाँ मनुष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य मुट्ठी-भर अनाज है। उसके समक्ष सब कुछ असंगत हो जाता है - रागात्मक संबंध, नैतिक मान्यताएँ, मानवीय मूल्य। अस्तित्व का संकट सबसे बड़ा संकट दिखाई पड़ता है। विपत्ति और निराशा के घने कुहरे से घिरकर भी मनुष्य का साहस अपराजेय है। वह संघर्ष करता है क्योंकि मानवता जीवित रहना चाहती है।

रांगेय राघव बंगाल के अकाल को भारतीय स्वाधीनता से जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार :
'बंगाल की भुखमरी तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक हमारा देश आजाद नहीं हो जाएगा और मेरा विश्वास है कि इस भूख के विरुद्ध लड़कर जनता ने अपनी महान शक्ति का परिचय दिया है, जिससे हमें एक नया साहस भरकर हुंकार उठना चाहिए।'

लेखक ने पराधीनता और जनशक्ति को अपने युग की दो बड़ी सच्चाइयों के रूप में पहचाना है। लेखक का आक्रोश अंग्रेज़ी शासन और उसके संरक्षण में पल्लवित होते पूंजीपतियो के विरुद्ध है जिन्होंने व्यापक जनहित की उपेक्षा करते हुए चोर-बाज़ारी और मुनाफाखोरी को प्रश्रय दिया। बंगाल का व्यापक नर-संहार अंग्रेज़ी-शासन और ऐसे ही व्यापारियों की दुरभिसंधि का परिणाम था लेकिन क्रांति को चिरजीवी रखने के आकांक्षी जनमानस ने हार नहीं मानी। यदि एक ओर वे नर-पिशाच थे जो मनुष्य को मरते देखकर भी चुप थे। रुपये की खन-खन में जो अपनी सारी सभ्यता और सारा मनुष्यत्व भूलकर राक्षसी आंख तरेरा करते थे तो दूसरी ओर ऐसे लोगों की संख्या भी कम न थी जो मनुष्य को मरने देना नहीं चाहते थे। एक विज्ञ लेखक की भांति रांगेय राघव संपूर्ण परिप्रेक्ष्य को परत-दर-परत उघाड़ते चलते हैं। उनकी गहरी अंतर्दृष्टि इतिहास, परंपरा, समाज, व्यक्ति और मानवता सबको एकसूत्र में पिरोकर इस दुर्भिक्ष की विभीषिका के विरुद्ध मानवीय सामर्थ्य को शब्दबद्ध करती है। उनके एक-एक शब्द में लेखक की सच्चाई और ईमानदारी झलकती है। जनता की अपराजेय शक्ति में उनकी अटूट निष्ठा एक नया विश्वास उत्पन्न करती है।

कुल मिलाकर 'तूफानों के बीच' रांगेय राघव का एक सफल एवं सार्थक प्रयास है जिसमें लेखक ने अकाल की विभीषिका को शब्दबद्ध किया है। अंग्रेज़ों और पूंजीपतियों के गठजोड़ को उसके लिए उत्तरदायी माना है। अकाल के परिणामस्वरूप विभिन्न समस्याओं से जूझते मनुष्य की संघर्षशील जिजीविषा से साक्षात्कार किया है।

25.5 अदम्य जीवन : मूल संवेदना

'तूफानों के बीच' में संकलित रिपोर्ताज **अदम्य जीवन** शिद्धिरगंज नामक गाँव पर केंद्रित है। शिद्धिरगंज के माध्यम से यह बंगाल के दारुण यथार्थ का साक्षात्कार है।

रांगेय राघव की मानवतावादी जीवन-दृष्टि से अनुप्राणित **अदम्य जीवन**, 'तूफानों के बीच' का प्रतिनिधि रिपोर्ताज कहा जा सकता है। यह कृति की मूल संवेदना का वाहक रिपोर्ताज है। बंगाल का अकाल, अकाल के कारण तथा अकाल जन्य स्थितियों का मार्मिक चित्रांकन - यहाँ अपनी समग्रता में उपस्थित है। भूख, रोग और मृत्यु का साम्राज्य और उनसे जूझता मनुष्य स्थितियों की प्रतिकूलता के बावजूद मनुष्य की संघर्षमय चेतना ही सत्य है। लेखक उसी का गुणगान व अभिनंदन करता है।

अदम्य जीवन में चित्रित यथार्थ भयावह है। 'मृत्यु' इस यथार्थ का सबसे बड़ा सच है। गाँव की सीमा शुरू होने से पूर्व कब्रें शुरू हो जाती हैं :
'फोड़ों की तरह वे कब्रें जगह-जगह सूजी हुई सी दिखाई दे रही थीं।'

एक-एक कब्र में दो-दो, तीन-तीन लाशें एक साथ दफनाई गई। हर घर में मौत हुई थी। तीस-चालीस लोग प्रतिदिन मृत्यु की भेंट चढ़ जाते। आंकड़े भयावह थे। रहम्त के घर में पच्चीस आदमी थे और उनमें से बीस मर गए थे, आदू मियाँ के घर में उन्नीस आदमी थे और सब मर गए थे, एक मां के छः बच्चे अनाज और दवा के अभाव में उसकी आँखों के सामने चल बसे, अब्दुर्रहमान के घर में सोलह आदमी थे और उनकी मृत्यु की त्रासदी झेलने को वह अकेला बचा था। इस पर भी, किसी का रोना-कराहना शेष नहीं बचा। जीवन के अभावों से जूझते आँखों की नमी सूख गई है। लेखक से उन्हें बस यही अपेक्षा है कि वह एक-एक कब्र से बात करे और जुलाहों के चूहों की तरह मरने की व्यथा-कथा सारे संसार को सुनाये।

रांगेय राघव जैसे रचनाकार के लिए भी यह स्थिति मात्र घटना के विवरण तक ही सीमित नहीं रही है वरन् उनकी मानवीय चेतना मनुष्य को मृत्यु के सत्रांस से इस तरह संघर्ष करता देख अत्यंत विफल हो गई :

'....आँखों के सामने एक बारगी उनमें सोए कंकाल तड़प उठे और नाच उठे यातना से व्याकुल, भूख से तड़प-तड़पकर मरते हुए प्राणियों के चित्र।'

एक तरफ मृत्यु का यह आतंकपूर्ण रूप है तो दूसरी और बीमारियों की भीषण यंत्रणा ने अकाल की स्थिति को और भी दुस्सह बना दिया। मलेरिया, चेचक और चर्म रोग जैसी बीमारियों से जूझने के उनके पास कोई साधन नहीं है। सहायता के नाम पर एक सरकारी दवाखाना अवश्य था, न तो कोई दवाइयाँ थीं, न मरीजों की खास तवज्जह और इस पर भी शासकीय मत की पुष्टि करता असिस्टेंट डाक्टर 75 फ़ीसदी आदमियों की हालत सुधारने का दावा करता है। जबकि रोग से ज़र्जर प्रतीक्षारत रोगी, उनकी बुझी आँखें, उभरी पसलियाँ और भयानक चर्म-रोग एक अलग कहानी कहते हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा भेजी गई सहायता भी अत्यंत अपर्याप्त थी। डॉ. कूंटे के नेतृत्व में गया एक मेडिकल जत्था और फ्रेंण्ड्स एम्बुलेंस यूनिट द्वारा चलाया जा रहा एक लंगरखाना जहाँ सौ बच्चों में मात्र साढ़े सात सेर खिचड़ी बंटती थी।

सब ओर, अभाव और अभावजन्य भ्रष्टाचार का बोलबाला है। चावल किसी भी दाम नहीं मिलता। हर चीज़ पर मुनाफाखोरी और चोरबाज़ारी हो रही है। अधिकांश लोग एक वक्त खाकर ही जीवित रह रहे हैं। तीन-साढ़े तीन सौ लोग गाँव छोड़कर भाग गए। आम आदमी के लिए स्थिति और भी भयंकर हो जाती है। व्यवस्था पर से उसका विश्वास उठ गया - 'गाँव-कमेटी के, यूनियन-बोर्ड के मेम्बर सब चोर हैं, चोर! कोई हमारी परवाह करता है? रिश्तेदारों को कारड देते हैं, अपनों को देते हैं, हमारी क्या पूछ...?'

बंगाल के इस भयानक अकाल ने जनमानस को झकझोर कर रख दिया। संकट की घड़ी में मनुष्य के भीतर छिपे पिशाच उजागर हुए। व्यक्ति के स्वार्थ और 'निज', 'पर' की परिभाषाओं ने मानवता के अंतःसूत्र को एक झटके में तोड़ डाला। एक होकर व्यक्ति बड़ी से बड़ी ताकत से लड़ सकता है लेकिन एकता का अभाव उसे यूं मरने के लिए छोड़ देता है। आत्मविश्लेषण के क्षणों में बंगाल के निवासियों ने भी यह अनुभव किया कि अकालजन्य स्थितियों में मानव की ऐसी दुर्दशा का बहुत बड़ा कारण एकता का न होना ही है - 'हममें एका नहीं है, वर्ना क्या मजाल कि वह अपनी मनमानी करें।'

व्यक्ति का संकुचित स्वार्थ उसे अपने-अपने घेरे में बांधे रहा और पेट की आग ने समस्त मूल्यों ओर नैतिकताओं को खोखला कर दिया। भूख की भीषणता के आगे समस्त रागात्मक संबंध

सूख जाते हैं। मानवीय भावनाएँ कठोर हो जाती हैं। कब्रों के ढेर में एक बच्चा केवल अपने बाप की कब्र पहचानता है यह बहुत बड़ी बात है। नहीं तो सब कब्रों पर पैर रख खड़े हो जाते, कितनी लाशें बिना कफ़न के दफनाई गई। जहां जीवित के सम्मान की रक्षा के साधन पर्याप्त न थे वहाँ मृत लाशों का सम्मान कोई कैसे रखता। ऐसे समाज में औरत की अस्मत की उसके अस्तित्व से अधिक मूल्यवत्ता नहीं थी। सब लड़ रहे थे किसी तरह अपना जीवन बचाने को, ऐसे में नैतिकता के मानदंडों का ठहर पाना कठिन हो गया। शिद्धिरगंज की औरतों को यदि अपनी इज्जत बेचने पर उतारू होना पड़ा तो इसमें कितनी बुराई थी नहीं कहा जा सकता। 'कुछ कहते हैं कि जैसे इतने मरे, वे भी मर जातीं, तो हर्ज ही क्या था? पर मैं सोचता हूँ, मर जाना क्या सहज है? कोई क्या अपने आप मर जाना चाहता है?' यथार्थ के इस भयानक सच से लेखक सीधे साक्षात्कार करता है। इस आमनवीय यथार्थ की नग्नता को वह किसी आदर्श मूल्य की आड़ से ढंकना नहीं चाहते, बल्कि समस्त सामाजिक विसंगत मूल्यों के यथार्थ चित्रण द्वारा मानवीय संवेदना को झकझोर कर नवीन आर्थिक, सामाजिक मूल्य चिंतन की दिशा संधान के लिए प्रेरित करते हैं।

इस अकाल को मानव निर्मित ठहराते हुए लेखक उस व्यवस्था पर प्रश्न-चिह्न लगाता है जो साधनों को कुछ हाथों में केंद्रित करके व्यापक जन समुदाय को इस भीषण संघर्ष की ओर ढकेल देती है। जहाँ वस्तु व्यक्ति के लिए न होकर पैसे क लिए हो जाती है। बंगाल के इस अकाल में भी पूंजीपति पैसे से सब कुछ नापता रहा और मनुष्य की भूख और नग्नता ने उसे सर्वनाश के कगार पर ला खड़ा किया - '...मनुष्य को नंगा रखकर मनुष्य ने अपने मुनाफों के लिए बेशुमार कपड़ा तालों में बंद कर रखा , जहाँ वस्तु मनुष्य के लिए न होकर पैसे के लिए थी। कितना बड़ा व्यंग्य और विद्रूप था यह कि आज कपड़ा बनाने वाले स्वयं नंगे थे।'

अदम्य जीवन केवल इस स्थिति का ब्यौरा भर नहीं है। जनता के प्रति लेखक की सच्ची सहानुभूति, संवेदनशील दृष्टि और व्यापक जनसमुदाय के प्रति उसकी पक्षधरता इस रिपोर्ताज को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था के विरूद्ध एक सक्रिय हस्तक्षेप का रूप देती है। व्यक्ति के संकुचित स्वार्थ पर टिकी इस व्यवस्था के विरूद्ध लेखक उस स्वार्थ की परिकल्पना करता है जो सबका स्वार्थ हो, जिसमें सबका सुख और सबका हित निहित हो। चारों और व्याप्त अकाल के संत्रास से पीड़ित मनुष्य की वेदना में रांगेय राघव को एक नई जीवन-दृष्टि प्राप्त हुई है। भूख, रोग और मृत्यु के बावजूद भी लेखक का विश्वास है कि बंगाल मर नहीं सकता - 'जहाँ भूख और बीमारियों से लड़कर भी मनुष्य के बालकों में क्रांति को चिरजीवी रखने का अपराजित साहस है, वह राष्ट्र कभी नहीं मर सकेगा।'

मानव की मानवीयता में लेखक की आस्था अटूट है। दुःख और अत्याचार के भीतर लेखक ने मनुष्यता की अजस्र धारा को संचरित होते देखा है। भूख के विरूद्ध लड़ती जनता की शक्ति और साहस का अनुभव किया है। विपरीत परिस्थितियों में यदि कुछ सच है तो केवल बंगाल के बच्चों की अदम्य जिजीविषा, जिसे देखकर लेखक मानों घोषणा करता है :

'युग-युग तक संसार को याद रखना पड़ेगा कि एक दिन मनुष्य के स्वार्थ और असाम्य के कारण, गुलामी और साम्राज्यवादी शासन के कारण, बंगाल जैसी शस्य श्यामला भूमि में मनुष्य को भूख से दम तोड़ना पड़ा था? और लोगों ने उसे पूरी शक्ति से इसलिए झेला था कि मानवता जीवित रहना चाहती थी। उसे कोई मिटा नहीं सकता।'

निष्कर्षतः **अदम्य जीवन** युग की उन समस्याओं की अभिव्यक्ति है जो प्रत्यक्षतः अकाल का परिणाम देखती है लेकिन वस्तुतः वह अंग्रेज़ों के साम्राज्यवादी शासन, पूंजीवाद और व्यक्ति के स्वार्थ का परिणाम है। यहाँ जीवन का वह रूप है जिसमे जिंदगी को 'सही-गलत' के सरलीकृत कटघरों में रखकर नहीं देखा जा सकता। भूख और मृत्यु की भीषण यंत्रणा के सम्मुख मानव मूल्यों व नैतिक धारणाओं की पहचान धुंधला जाती है। लेखक का आक्रोश उस

व्यवस्था के प्रति है जो मनुष्य को इस अंध गह्वर की ओर ढकेल रही है और उसकी पक्षधरता मनुष्य के उस रूप के साथ है जहाँ मानवता के जयघोष के लिए मानव संतान क्रांति के चिरजीवी होने का आकांक्षी है।

25.6 अदम्य जीवन : शिल्पगत विशेषताएँ

रिपोर्ताज में लेखक जिस उत्साह से अपने युग-सत्य का साक्षात्कार करता है उससे प्रायः उसका कथ्य शिल्प की अपेक्षा प्रधान रहता है किंतु यह भी सच है कि घटना के जीवंत स्रोतों से पूरी ईमानदारी और साहस से जुड़ने के कारण उसके शिल्प में भी गुणवत्ता और ताज़गी आ जाती है। जिस प्रकार रिपोर्ताज का कथ्य बहुमुखी होता है उसी प्रकार इसके शिल्प में भी अभिव्यक्ति की उन्मुक्तता रहती है। कहीं इसकी शैली वर्णनात्मक होती है, कहीं विवरणात्मक कहीं पत्र या डायरी की। रिपोर्ताज का लेखक, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा-वृतांत आदि अन्य गद्य विधाओं के तत्वों का भी प्रयोग करता है। कथ्य, चरित्र, संवाद आदि सभी तत्व रिपोर्ताज के रचनात्मक गठन में महत्वपूर्ण उपकरण बनकर आते हैं। **अदम्य जीवन** इन सभी शिल्पगत विशेषताओं को आत्मसात कर लिखा गया एक प्रौढ़ रिपोर्ताज है। इसका शिल्प भी इसके कथ्य की ही भांति महत्वपूर्ण है। वस्तुतः इसमें कथ्य और शिल्प की प्रौढ़ता के कारण ही उद्देश्य एवं प्रभाव की एकरूपता परिलक्षित होती है।

अदम्य जीवन में रांगेय राघव ने परिवेश का अत्यंत सृजनात्मक प्रयोग किया है। पूरी रचना में परिवेश प्राणदायक स्पंदन की तरह व्याप्त है। कहीं प्रकृति के माध्यम से तो कहीं व्यक्ति और परिस्थिति के परस्पर संघात से उभरते सजीव चित्रों में बंगाल का इतिहास और परंपरा मानों जीवित हो उठे हैं। रिपोर्ताज का प्रारंभ बंगाल की एक सुंदर सुबह के वर्णन से होता है :

'हम पगडंडियों में बढ़ते जा रहे थे। सूर्य आकाश में चढ़ने लगा था। ... आकाश में बादल तैर रहे थे, जिन्हे देखकर खेतों से एक सोंधी-सी उसांस उमंग उठती थी। दूर हरियाली की हहर तेज चलती हवा की तरंगों पर गूंज-सी उठती थी। हरी-भरी पृथ्वी पर कभी-कभी बादलों के छा जाने से कहीं धूप और कहीं छाया, बरबस हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थीं।'

बंगाल की शस्य श्यामला मनोंहारी भूमि और मनुष्य के शोषण का प्रतीक वह भयंकर अकाल मानो प्रकृति भी मनुष्य के दर्द की भागीदार बन गई हो - 'वर्षों से ताड़ का वह पेड़ इसी तरह खड़ा है और वर्षों से उसके हिलते पत्तों ने बादलों की मर्मर सुनी है किंतु आज उसकी छाया में मनुष्य विक्षुब्ध हैं।'

रिपोर्ताज विधा के अनुरूप यहाँ कोई कथा नहीं है लेकिन घटनाएँ है और उन घटनाओं को संगठित करन वाले तत्व के रूप में परिवेश की अपनी विशिष्ट भूमिका है। बंगाल की धरती, प्रकृति, मनुष्य और उसकी संघर्षशील जिजीविषा रिपोर्ताज के एक-एक शब्द में दिखाई पड़ते हैं।

चित्रात्मक भाषा का प्रयोग इस रिपोर्ताज की सबसे बड़ी शक्ति है। रिपोर्ताज के लिए कहा जाता है कि उसमें क्रिया का सौंदर्य होता है। उसकी भाषा में त्वरा होती है। वस्तुतः लेखक का उद्देश्य ही उसकी भाषा में इन गुणों की सृष्टि करना है। यहाँ भी रांगेय राघव भूख, रोग और मृत्यु से जूझते बंगाल के लोगों की व्यथा-कथा सुनाकर साम्राज्यवादी शासन और पूंजीपतियों की दुरभिसंधि को उद्घाटित करना चाहते हैं। उनके हृदय का आवेग और पीड़ा रिपोर्ताज के प्रत्येक शब्द में बोलती सुनाई पड़ती है। यहाँ भाषा का सायास प्रयोग नहीं है। सामान्य जनजीवन की भाषा का प्रयोग करते हुए भी लेखक ने उसे अपूर्व अर्थ क्षमता प्रदान की है।

'खेतों में कब्रें चुपचाप उदास-सी सोई पड़ी थी, जिन्हें चिथड़ों में लिपटा एक बुड्ढ़ा एक पेड़ की छाया में बैठा विरक्त भाव से देख रहा था। एक टूटी-सी दीवार में तीन आले अब भी खड़े थे, मगर घर नहीं थे। आठों घर विध्वस्त पड़े थे। उनके सामने बराबर-बराबर में तीस कब्रें पड़ी थीं और एक नवयुवक, जो देखने में बूढ़ा लगता था, उनकी और देख-देखकर मुस्करा रहा था। वे सब एक दिन जुलाहों के घर थे, पर अकाल के ताने और बीमारियों के बाने ने सहसा उनके जीवन-व्यापार का अंत कर दिया था।'

कहीं-कहीं लेखक ने ऐसी उपमाओं का प्रयोग किया है जो उस त्रासदी को साकार करने में सक्षम है। जेसे यहां - 'अकाल के ताने और बीमारियों के बाने ने' या फिर 'जुलाहे चूहों की तरह मर रहे हैं' आदि। लेखक का कल्पना विधान जीवन के कटुतम यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए ऐसे सादृश्य उपस्थित करता है जो पाठक को झकझोर देने के साथ ही भाषा को ऊर्जा प्रदान करते हैं - 'सामने भट्टी में से धुआं निकलकर ऊपर घुमड़ रहा था। आज सारा बंगाल महानाश की आग पर लटका भुन रहा है और चारों और से राक्षस मानों उसे चबा जाना चाहते हैं।'

अलग-अलग स्थलों पर भाषा भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है। कहीं उसमें इतना आवेग है तो कहीं एक निमर्म तटस्थता। व्यवस्था के विद्रूप को उद्घाटित करने में तल्खी और व्यंग्य इस भाषा के महत्वपूर्ण उपकरण हैं। लेखक की आंतरिक बेचैनी पूरे रिपोर्ताज में गत्यात्मकता व नाटकीयता का विशिष्ट समंजन करती है। लेखक के पास कहने को बहुत कुछ है। उसके आस-पास दर्द से भरे अनेक चेहरे हैं जिन्हें वह अपनी रचना में साक्षात् कर देना चाहता है। यह बेचैनी उसके कथ्य को गति देती है। सतह के भीतर की विसंगति को उद्घाटित करने के लिए लेखक ने नाटकीय शैली का प्रयोग किया है :

'एक औरत जो पास में खड़ी थी, कहने लगी, तुम डॉक्टर हो? पहले क्यों नहीं आए? जाने कितने जानें बच जातीं।..'

उस समय उस औरत की बात की अनसुनी करके खैराती अस्पताल का एसिस्टेंट डाक्टर मुझसे कह रहा था - हमने 75 फ़ीसदी आदमियों की हालत सुधार दी है...। .. एक ओर हमारे शासक बोल रहे थे, दूसरी ओर वही बात जनता कह रही थी। सामने अनेक जर्जर रोगी खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे बुझी हुई आँखें, उभरी हुई पसलियाँ और वही भयानक चर्म-रोग।'

घटना के ब्यौरों के बीच में लेखक ने जीते जागते पात्र खड़े कर दिए हैं और उनकी वेदना की अभिव्यक्ति होती है - छोटे-छोटे वाक्यों और अधूरे छूटे संवादों में।

'अब यही दो-चार घर रहे गए हैं, और कुछ दिन बाद शायद ...।'

x x x x

'वह सामने एक भद्रलोक का घर था। उसे भी टीन बेच देनी पड़ी, क्योंकि .....'

x x x x

'मैं अब यहीं लंगर खाने में काम करती हूँ, किसी तरह पेट भर जाता है। भीख नहीं मांगी जाती, बाबू....।'

ये अधूरे संवाद अधूरे होकर भी सार्थक हैं। पूरी कार्य-कारण श्रृंखला को अनावृत करने में इनका योगदान है। ये रचना को अधिक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय बनाते हैं।

कुल मिलाकर, इस रिपोर्ताज की भाषा अर्थ गांभीर्य से युक्त, अनेक अर्थ स्तरों को उद्घाटित करने वाली प्राणवान और जीवंत भाषा है। जीवन के यथार्थ से तराशी गई इस भाषा के शब्दों में धार है। वाक्य गठन, शब्द-चयन एवं शैली विन्यास सभी दृष्टियों से अदम्य जीवन में

रिपोर्ताज का शिल्प अपने पूर्ण उत्कर्ष पर दिखाई देता है। विशेषतः उन स्थलों का अक्षुण्ण महत्व है जहाँ लेखक मनुष्य के साहस और मानवता में अपनी आस्था प्रकट करता है। उसके ओजपूर्ण उद्‌गारों में उसकी आत्मा बोलती है।

इस प्रकार, अपने कथ्य के प्रस्तुतीकरण में रांगेय राघव की प्रौढ़ रचनाशीलता के दर्शन होते हैं। रिपोर्ताज के शिल्प को सप्राण बनाने के लिए उन्होंने परिवेश का विशेष उपयोग किया है। प्रकृति के अनेक बिंब मनुष्य की पीड़ा के साक्षी बनकर आए हैं। शब्द, चयन एवं वाक्य गठन की दृष्टि से उनकी भाषा में उनके विचारों को वहन करने की अपूर्व क्षमता है। जन-जीवन से जुड़ी भाषा को लेखक का सादृश्य विधान नई ऊर्जा व गति देता है।

25.7 अदम्य जीवन : मूल्यांकन

विधा के विकास की दृष्टि से यह युग रिपोर्ताज के विकास का दौर है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, शिवदान सिंह चौहान से लेकर रांगेय राघव, प्रकाशचंद्र गुप्त, अमृतराय, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, धर्मवीर भारती आदि साहित्यकारों ने इस विधा के विकास में अपना अमूल्य योगदान किया है। विषयवस्तु की विविधता तथा प्रस्तुतीकरण में व्यक्तित्व की निजता के समावेश ने प्रत्येक रिपोर्ताज को विशिष्ट बना दिया है। सबका अपना-अपना रंग है। इसलिए सबको एक धरातल पर स्थित कर तुलनात्मक दृष्टि से उनका अध्ययन न तो संभव है,न ही वांछनीय। जहाँ तक रांगेय राघव के रिपोर्ताजों का प्रश्न है तो उनमें अवश्य ही समानता दिखाई पड़ती है। अधिकांश रिपोर्ताज बंगाल के अकाल पर लिखे गए हैं। एक रिपोर्ताज ग्वालियर मिल में मज़दूरों पर गोली चलाने की घटना को लेकर भी है। 'यह ग्वालियर है' शीर्षक से यह रिपोर्ताज ग्रंथावली के आठवें भाग में संकलित है। रांगेय राघव के रिपोर्ताज की विशिष्टता यह है कि उन सभी में लेखक की मानवतावादी दृष्टि एवं साम्यवादी चेतना के दर्शन होते हैं। उनके रिपोर्ताजों पर टिप्पणी करते हुए डॉ. मधुरेश ने लिखा है - 'चाहे बांगल के अकाल से संबंधित रिपोर्ताज हो या ग्वालियर में मज़दूरों पर हुए गोलीकाण्ड से, रांगेय राघव सब कहीं जनता की साम्राज्य-विरोधी चेतना, स्वाधीनता संग्राम में हिस्सेदारी के उत्साह और सांप्रदायिक सद्‌भाव को रेखांकित करते चलते हैं।'

रांगेय राघव अपराजेय सामर्थ्य के रचनाकार हैं। समीक्षकों ने यद्यपि उन्हें प्रगतिशील चेतना का लेखक कहा है तथापि वे सच्चे अर्थों में मानववादी विचारधारा के रचनाकार हैं। इसी भावना से अनुप्राणित होकर उन्होंने अपने रिपोर्ताजों में व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर की समस्याओं का निरूपण किया है। उनकी जीवन दृष्टि युगीन स्थितियों का प्रतिफलन है। उनके रिपोर्ताज युगीन समस्याओं की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति हैं।

'तूफानों के बीच' में लेखक की यही जीवन दृष्टि उद्‌घाटित हुई है। मनुष्य को बाँटने वाली धन-लिप्सा की निरंतर चौड़ी होती खाई और परिणामस्वरूप व्यापक नरसंहार - इन सबके बीच लेखक बार-बार स्वयं से प्रश्न करता है - 'कौन-सा है वह उद्देश्य, लक्ष्य या धर्म, जिसके पीछे हम लड़े? कौन-सी है वह नैतिकता जो हमें आज भी परस्पर लड़ने की आज्ञा दे सकती है।... क्यों नहीं समझता मनुष्य अपना स्वार्थ जो सबका स्वार्थ हो?'

अदम्य जीवन में लेखक की यह विचारधारा शब्दशः प्रस्फुटित हुई है। लेखक ने अकाल के प्रश्न पर गहराई से विचार किया है और उसके विभिन्न आयामों - कारण और परिणामों की जीवंत प्रस्तुति की है। 'तूफानों के बीच' में संकलित अन्य रिपोर्ताजों में इन स्थितियों-परिस्थितियों के विश्लेषण के अतिरिक्त एक अन्य दिशा का भी संधान किया है - मानव मूल्यों तथा संबंधों की पड़ताल। लेखक ने इससे पूर्व एक दुनिया देखी थी जिसमें मानवीय मूल्य थे, प्रेम था और तृप्ति थी परंतु बंगाल के इस अकाल में जीवन के वास्तविक रूप को देखकर उसे उन मूल्यों के एक नए रूप का बोध हुआ। उसने प्रेम का सही अर्थ समझा। इस विभीषिका ने उसके प्रेम को मुक्त

किया, 'स्व' से 'सर्व' की ओर उन्मुख किया और उसने प्रेम की सार्थकता को पा लिया - 'चालीस करोड़ को आज़ाद होना पड़ेगा और फिर हमारा-तुम्हारा प्रेम गुलामों का न होकर स्वतंत्र मानव-मानवी का होगा।'

इस प्रकार इस कृति में एक ओर अकाल के प्रश्न पर विचार किया गया है तो दूसरी ओर करूणा एवं बंधुत्व जैसे जीवन मूल्यों की जीवंत प्रस्तुति की गई है। एक ओर अंधविश्वास, एकता का अभाव, शोषकों के अत्याचार और संकुचित स्वार्थ जैसी पतनोन्मुख करने वाली कुरीतियों का रूपांकन है तो दूसरी ओर कृति के भीतर अनुस्यूत मानववादी एव प्रगतिशील विचारधारा उनके दृष्टिकोण की गहराई की परिचायक है। कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज हिंदी साहित्य को रांगेय राघव के प्रशंसनीय योगदान का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

25.8 सारांश

इस इकाई में आपने **अदम्य जीवन** शीर्षक रांगेय राघव के रिपोर्ताज के बारे में अध्ययन किया। विधा के रूप में रिपोर्ताज आधुनिक युग की देन है। द्वितीय विश्वयुद्ध के आस-पास इसका उदय एवं विकास हुआ है। रिपोर्ताज एक तथ्यपरक विधा है, जिसके केंद्र में किसी न किसी महत्वपूर्ण घटना का सजीव वर्णन रहता है। यहाँ घटना का संश्लिष्ट रूप होता है जिसमें तथ्य को परिभाषित करता और आकार देता है मानवीय सत्य। इस रूप में, युग सत्य, युग संघर्ष, मनुष्य और उसका समाज, उत्थान-पतन की प्रेरक शक्तियाँ सभी उस घटना के भीतर सन्निहित रहते हैं। रिपोर्ताज में लेखक के दृष्टिकोण की पूर्ति करता है 'लेखक का उत्साह' जिसे आलोचकों ने लेखक की पक्षधरता का पर्याय माना है।

रिपार्ताज तात्कालिक प्रतिक्रिया होते हुए भी कालातीत है। इसका वर्तमान भूत और भविष्य से जुड़ा रहता है। लेखक का दृष्टिकोण ही रिपोर्ताज को चिरस्थायी बनाता है लेकिन वह इतना हावी नहीं होना चाहिए कि मूल कथ्य को ही ढंक ले। रिपोर्ताज में लेखक के दृष्टिकोण की पूर्ति करता है 'लेखक का उत्साह' जिसे आलोचकों ने लेखक की पक्षधरता का पर्याय माना है।

रिपोर्ताज विधा के अंतर्गत शिल्पगत संयम, परिवेश की प्राणवत्ता तथा सजीव भाषा का प्रयोग किसी भी घटना को जीवंत अनुभव में परिवर्तित कर देते हैं। हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज का प्रारंभ 1938 में प्रकाशित शिवदानसिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मीपुरा' से माना जाता है। रिपोर्ताज के प्रारंभिक हस्ताक्षरों में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का नाम भी उल्लेखनीय है। रिपोर्ताज विधा के विकास में 'हंस' पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वातंत्र्यपूर्व रिपोर्ताज लेखकों में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव, प्रकाशचन्द्र गुप्त, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में अमृतराय, रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीचंद्र जैन, शिवसागर मिश्र, धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ रेणु, विवेकीराय, मणिमधुकर आदि का सक्रिय योगदान रहा है। जो भी हो अब तक का समय रिपोर्ताज के लिए विकास का दौर है। अभी इस क्षेत्र में बहुत-सी संभावनाएँ बाकी हैं।

रिपार्ताज की परंपरा में 'तूफानों के बीच' एक मील स्तंभ के समान है। संवेदना एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से यह रांगेय राघव का सशक्त प्रयास है। 'तूफानों के बीच' 1942 के बंगाल के अकाल का मार्मिक चित्रण है। अकाल की विभीषिका, उसके कारण और अकालजनित समस्याओं का वर्णन करते हुए लेखक ने साम्राज्यवाद ओर पूंजीवाद की दुरभिसंधि का पर्दाफाश किया है। 'तूफानों के बीच' को चिरस्थायी एव अविस्मरणीय कृति बनाने में लेखक की

मानवतावादी दृष्टि का विशेष योगदान है। अकाल के संकट में लेखक साधारण जन की पीड़ा का द्रष्टा भी है और भोक्ता भी।

अदम्य जीवन 'तूफानों के बीच' की मूल संवेदना का वाहक रिपोर्ताज है जिसमें लेखक ने मृत्यु, भूख और महामारी से जूझते व्यक्ति की दारुण दशा का चित्रण किया है। संकट की घड़ी में नैतिक मान्यताओं के स्खलन की ओर भी संकेत किया गया है। चोर-बाजारी-मुनाफ़ाखोरी के रूप में व्यक्ति का संकुचित स्वार्थ किस तरह सब कुछ निगलने को तत्पर था, इसी की जीवंत प्रस्तुति है - **अदम्य जीवन**।

मनुष्य की मनुष्यता में लेखक की आस्था अटूट है। इसीलिए लेखक घोषणा करता है कि 'बंगाल कभी मर नहीं सकता।' परिस्थितियों की प्रतिकूलता में बंगाल के नन्हें बालकों का क्रांति में विश्वास लेखक की मान्यता को पुष्ट करता है।

शिल्प की दृष्टि से, **अदम्य जीवन** में लेखक ने परिवेश का रचनात्मक प्रयोग किया है। चित्रमय भाषा, छोटे-छोटे संवाद, विशिष्ट वाक्य-विन्यास ये सब इस रिपोर्ताज के रचनात्मक गठन के विविध उपकरण हैं। अपने कथ्य एव शिल्प दोनों दृष्टियों से **अदम्य जीवन** हिंदी साहित्य का एक प्रौढ़ रिपोर्ताज है। इसमें अभिव्यक्त लेखक की जीवन-दृष्टि इसे एक अविस्मरणीय रचना बनाती है।

अभ्यास

1. रिपोर्ताज की विशेषताओं के संदर्भ में **अदम्य जीवन** की समीक्षा कीजिए।
2. **अदम्य जीवन** की शिल्पगत विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
3. **अदम्य जीवन** की विषयवस्तु के प्रति लेखकीय दृष्टिकोण का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

इकाई 26 साक्षात्कार : ऑक्टेवियो पॉज़

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 साक्षात्कार विधा का वैशिष्ट्य
26.3 साक्षात्कारदाता-पात्र के चयन का औचित्य
26.4 साक्षात्कार में उठे प्रश्नों का विवेचन
26.5 साक्षात्कार की लेखन-शैली
26.6 सारांश

26.0 उद्देश्य

यह एम.ए. हिंदी के बीज पाठ्यक्रम 'नाटक और अन्य गद्य विधाएँ' की छब्बीसवीं और अंतिम इकाई है। इस इकाई में आप 'साक्षात्कार : ऑक्टेवियो पॉज़' का अध्ययन करेंगे। इसमें हम साक्षात्कार विधा तथा ऑक्टेवियो पॉज़ से लिए गए साक्षात्कार में उठाए गए प्रश्नों को विवेचित-विश्लेषित करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- साक्षात्कार का आशय समझ सकेंगे,
- साक्षात्कारदाता-कवि और कला चिंतक ऑक्टेवियो पॉज़ के विषय में जान सकेंगे,
- बीसवीं शताब्दी के सम्मुख उपस्थित प्रमुख सांस्कृतिक समस्याओं से अवगत हो सकेंगे,
- कवि-कलाकार की वैचारिक दृष्टि से परिचित हो सकेंगे, और
- विवेच्य साक्षात्कार के स्वरूप एवं लेखन-शैली की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

एम.ए. हिंदी पाठ्यक्रम-4 'नाटक और अन्य गद्य विधाएँ' के अंतर्गत नाटकों के साथ-साथ इस पाठ्यक्रम में आप निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, यात्रा-वृतांत, रिपोतार्ज़ आदि से संबंधित इकाइयाँ पढ़ चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आप गद्य की एक अन्य विधा साक्षात्कार का अध्ययन करेंगे। इस इकाई का आधार हिंदी के वरिष्ठ कवि और कथाकार श्रीकांत वर्मा द्वारा लैटिन-अमेरिकी कवि और कला चिंतक ऑक्टेवियो पॉज़ से लिया गया साक्षात्कार है। आप इसके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे। यहाँ साक्षात्कार लेने वाले साक्षात्कारकर्ता हैं : आधुनिक हिंदी कवि श्रीकांत वर्मा और साक्षात्कारदाता हैं : स्पेनी भाषा के विश्वप्रसिद्ध कवि ऑक्टेवियो पॉज़। श्रीकांत वर्मा ने इनसे अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर वार्तालाप किया है। यह साक्षात्कार श्रीकांत वर्मा की निबंध पुस्तक -'बीसवीं शताब्दी के अंधेरे में : ऑक्टेवियो पॉज़' शीर्षक से संग्रहीत है।

साक्षात्कार पत्रकारिता की एक महत्वपूर्ण विधा है और आमतौर पर सभी साक्षात्कारों को साहित्यिक स्तर का नहीं कह सकते। साक्षात्कार लेना पत्रकारों का व्यवसाय है। लेकिन लेखक भी साक्षात्कार लेते हैं, ले सकते हैं। साक्षात्कार प्रायः महत्वपूर्ण व्यक्तियों का लिया जाता है। ऐसे व्यक्ति का जिसके विचारों को लोग जानना चाहते हैं। जिसके विचारों का समाज पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन साक्षात्कार कितने भी महत्वपूर्ण व्यक्ति का क्यों न लिया जाए, साक्षात्कार को महत्वपूर्ण बनाना सिर्फ साक्षात्कार देने वाले पर निर्भर नहीं करता। साक्षात्कार की कामयाबी साक्षात्कार लेने वाले पर ज्यादा निर्भर करती है। किस व्यक्ति से कैसे सवाल पूछे

जाने चाहिए, उसके दिल की बात को कैसे बाहर निकालना चाहिए यह साक्षात्कार लेने वाले पर निर्भर करता है।

श्रीकांत वर्मा हिंदी के वरिष्ठ कवि और कथाकार थे। लेकिन वे कई साल तक हिंदी के श्रेष्ठ समाचार-साप्ताहिक 'दिनमान' से भी संबद्ध रहे। बाद में, वे कांग्रेस पार्टी के सदस्य, उसके महासचिव और राज्यसभा सदस्य रहे। उन्हें कई देशों की यात्रा करने का अवसर मिला, कई विश्व प्रसिद्ध लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों के संपर्क में आने का भी मौका मिला। यही वजह है कि दक्षिण अमरीकी कवि ऑक्टेवियो पॉज़ से उनकी बातचीत बहुत सहज और समतल धरातल पर होती है उनके प्रश्न ऐसे हैं जो भारतीयों के लिए तो महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं ही, सभी के लिए मूल्यवान हैं।

इस इकाई का अध्ययन करने से पूर्व आपने उक्त साक्षात्कार का अध्ययन अवश्य कर लिया होगा। अगर न किया हो तो अब कर लें, फिर आगे बढ़ें।

26.2 साक्षात्कार विधा का वैशिष्ट्य

आइए, ऑक्टेवियो पॉज़ से उनके विचार जानने-समझने से पहले यह जान लें कि साक्षात्कार विधा क्या है? इससे अपेक्षाएँ क्या हैं? हिंदी गद्य साहित्य में साक्षात्कार की विकास परंपरा क्या है एवं उसमे श्रीकांत वर्मा के ऑक्टेवियो पॉज़ साक्षात्कार का स्थान क्या है? सबसे पहले हम साहित्यिक विधा के रूप में साक्षात्कार के विषय में चर्चा करेंगे। समसामयिक हिंदी गद्य साहित्य में साक्षात्कार विधा बातचीत की शैली में या प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी जाने वाली वह गद्य रचना है जो निरंतर लोकप्रिय होती चली जा रही है। प्रत्येक व्यावसायिक, गैर व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं में किसी न किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति से लिया गया साक्षात्कार पढ़ने को मिल जाता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में ही नहीं, साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में भी, साहित्य, कला और चिंतन के क्षेत्रों में काम कर रहे व्यक्तियों से लिए गए साक्षात्कार आज अत्यंत रुचिपूर्वक पढ़े जाते हैं। कुछ समय पहले तक यह माना जाता था कि रचनाकार को जो कुछ कहना था, वह उसने अपनी रचना में कह दिया। किंतु जैसे-जैसे जीवन की गति तेज़ होती गई है, विचारों में भी बदलाव तेज़ी से आया है। साथ ही, समयाभाव बढ़ा है। पाठक किसी विद्वान द्वारा दिए गए साक्षात्कार में उसके सूक्ष्म विचार-विश्लेषण, तर्क-वितर्क को जानने का प्रयास करता है, विषय को गहराई से समझ लेना चाहता है। वैसे भी, संवाद शैली में किया गया विचार-विश्लेषण आपेक्षाकृत अधिक संप्रेषणीय हो जाता है। आमने-सामने, रू-ब-रू बातचीत के मध्यम से दी गई जानकारी अपेक्षाकृत आसानी से हृदयंगम हो जाती है। संभवतः यही कारण है कि आज साक्षात्कार लोकप्रिय विधा बन गई है तथा हिंदी गद्य की भी महत्वपूर्ण विधा बन गई है।

अब विधा की दृष्टि से साक्षात्कार को समझने का प्रयास करें। हिंदी गद्य की नवीन विधा होने के कारण अभी तक यह कोई स्थिर रूपाकार ग्रहण नहीं कर पाई है। यहाँ तक कि इसके नामकरण में स्थिरता-एकरूपता नहीं मिलती। कहीं इसके लिए अंग्रेज़ी शब्द 'इंटरव्यू' प्रचलित हैं तो कहीं साक्षात्कार, कहीं भेंटवार्ता तो कहीं विशेष-परिचर्चा। फिर भी हम समझते हैं कि इस विधा के लिए अब 'साक्षात्कार' शब्द रूढ़ हो चला है जो प्रचलित होने के साथ-साथ उपयुक्त भी है।

आइए, अब 'साक्षात्कार' शब्द के मूल आशय को समझने का प्रयास करें। साहित्य में इससे क्या अपेक्षाएँ हैं, हिंदी में इसकी विकास पंरपरा क्या है, इसकी चर्चा बाद में की जाएगी। प्रसिद्ध कोशकार वामन शिवराम आप्टे कृत संस्कृत-हिंदी कोश में साक्षात्कार को 'साक्षात्' (अव्य.) - (सह+अक्ष+अति) ... के सामने, आँखों के समाने, दृश्य रूप में, हू-ब-हू के रूप में व्याख्यायित किया गया है। स्पष्टतः इसमें लेखक का व्यक्ति विशेष के सामने उपस्थित होना दर्शाया गया है। साथ ही इसमें अपनी आँखों से देखना, स्वयं जान लेना अपेक्षित है। कोशकार

आप्टे ने 'साक्षात्कार : प्रत्यक्ष ज्ञान, समझ, जानकारी' (संस्कृत हिंदी कोश - वामन शिवराम आप्टे) के माध्यम से अपनी आँखों के सामने आकार ग्रहण करते ज्ञान पर अधिक बल दिया है। कहना न होगा कि हिंदी साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं में 'साक्षात्कार' से यही काम लिया जा रहा है।

अंग्रेज़ी में 'इंटरव्यू' शब्द विषय-सापेक्ष या ज्ञान-सापेक्ष नहीं है। 'चैम्बर्स इंगलिश डिक्शनरी' के अनुसार यह शब्द 'इंटर' और 'व्यू' दो शब्दों के मेल से बना है। जिसका अर्थ है : 'म्यूचुअल व्यू' और साइट। अर्थात् पारस्परिक विचार। चैम्बर्स कोश के अनुसार इसका आशय है : किसी औपचारिक बैठक में उल्लेखनीय व्यक्ति से उसके विचार या कार्य-कलाप को प्रकाशित-प्रसारित करने हेतु प्रश्न पूछे जाना। इसमें पारस्परिक संवाद पर बल है। 'द ऑक्सफोर्ड गाइड टू द इंग्लिश लैंग्वेज' में इंटरव्यू शब्द को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है : 'Formal meeting or conversation with a person to asses his merits or obtain information' (द ऑक्सफोर्ड गाइड टू द इंग्लिश लैंग्वेज) अर्थात् किसी व्यक्ति से औपचारिक संवाद जिससे कि उस व्यक्ति की गुणवत्ता को मापा जा सके तथा सूचनाएँ ग्रहण की जा सके।

साक्षात्कार लेने वाले की विशेषताएँ

इससे स्पष्ट हुआ कि 'साक्षात्कार' में विशिष्ट व्यक्ति से किसी विषय पर प्रामाणिक जानकारी ली जाती है तथा बाचतीत के द्वारा उसके दृष्टिकोण, मन्तव्यों-मान्यताओं को समझने का प्रयास किया जाता है। उल्लेखनीय है कि विवेच्य विधा में किसी भी क्षेत्र के विशिष्ट व्यक्ति से प्राप्त ज्ञान पर अधिक बल है, जिसका माध्यम है : संवाद। इस पारस्परिक वार्तालाप के दौरान साहित्य-संस्कृतिकर्मी अपने समय, अपने युग की अनेकायामी समस्याओं, साहित्य-सृजन-प्रक्रियाओं, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं, सांस्कृतिक-दार्शनिक परिदृश्यों पर अपने विचारों, अपने सरोकारों, पीड़ाओं-चिंताओं अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। जिसे साक्षात्कार लेने वाला प्रश्नोत्तर शैली में लिपिबद्ध कर लेता है। कभी साक्षात्कर्ता के पास पूर्वनिर्धारित प्रश्नावली होती है तो कभी बहस-मुबाहसों के बीच नए-नए प्रश्न उठते हैं जो साक्षात्कार को नया रूप दे देते हैं। समालोचक डॉ0 रमेश कुंतल मेघ के अनुसार इसमें - 'प्रत्यक्ष पात्र के सम्मुख प्रश्नोत्तर रूप में समस्याएँ, दृष्टिकोण और विचारों पर बहस की जाती है तथा उसका केंद्रीकरण किया जाता है। (सामयिक हिंदी साहित्य - संकलन, नगेंद्र और भारतभूषण अग्रवाल) यहां यह बताना भी उचित होगा कि कभी-कभी एक व्यक्ति की अपेक्षा अनेक व्यक्ति एवं विषय पर विस्तृत परिचर्चा, बहस-मुबाहिसा करते हैं तथा उस विषय के विविध पक्षों को तर्क-वितर्क द्वारा उद्घाटित करते चले जाते हैं। बाद में, कोई भी उसे लिखित रूप प्रदान कर देता है। यह भी साक्षात्कार का एक रूप है।

आशय और अपेक्षाएँ

अब आइए, यह भी जान लें कि साक्षात्कार विधा से अपेक्षाएँ क्या हैं? उसकी विशेषताएँ क्या हैं? यदि एक प्रश्नमाला विशिष्ट व्यक्ति/व्यक्तियों के पास भेज दी जाए, जिससे वह उत्तर दे दे तो क्या वह 'साक्षात्कार' कहलाएगा? ये ऐसे प्रश्न हैं जो कहीं न कहीं इस विधा के विकासशील स्वरूप से जुड़ते हैं। दरअसल, जैसे-जैसे साक्षात्कार की उपयोगिता बढ़ी है उसकी संभावनाएँ बढ़ी हैं - पत्रकारिता, साहित्य, रेडियो, टेलीविज़न ने इसे अपनाया है। इस विधा में अस्थिरता, गतिशीलता के चिह्न उभरे हैं। यह स्वाभाविक भी है। दूसरे, विशिष्टता की दृष्टि से देखें तो पाते हैं कि साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति का इस विधा में, महत्वपूर्ण स्थान होता है। कहना होगा कि अब इस विधा में काम करने वाले तेजतर्रार, चाक-चौबंद व्यक्ति सामने आ रहे हैं। फिर भी इतना स्पष्ट है कि यदि सामान्य जानाकरी के बल पर साक्षात्कार लिया जाएगा तो उत्तर भी उसी के अनुरूप सतही, तथ्यों तक सीमित सूचनाओं का जंगल भर बन जाएगा। अतः साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति यहाँ महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यदि साक्षात्कार लेने वाला गंभीर

दृष्टि-संपन्न, सुचिंतित व्यक्ति है तो वह इस प्रकार के प्रश्न-प्रति प्रश्न पूछेगा कि विषय की गहराई में जाए बिना विचार-विमर्श संभव नहीं हो सकेगा।

पत्रकारिता के क्षेत्र में कभी-कभी ऐसा हुआ है कि साक्षात्कर्ता इस प्रकार के बेधक और पैने प्रश्न पूछता है कि सामने वाला व्यक्ति कुछ छिपाना चाहकर भी नहीं छिपा पाता। इस दृष्टि से इतालवी पत्रकार फेल्लाची का नाम स्मरणीय है, जिसके सामने बड़े-से-बड़ा तानाशाह, राजनीतिज्ञ, नौकरशाह थर-थर काँपते थे कि कहीं विषय की इतनी गहराइयों में न उलझ जाएँ कि वे ही समाज में षड्यंत्रकर्ता के रूप में नज़र आने लगें। कहीं-कहीं बातों ही बातों में चुटकियाँ लेते हुए बातों को उगलवा लेना भी साक्षात्कार की विशेषता हो जाती है। उदाहरण के लिए टी.वी. के 'ज़ी' चैनल पर 'आपकी अदालत' कार्यक्रम इसी विधा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति पर साक्षात्कार की विशिष्टता निर्भर करती है। ध्यान रहे कि कहीं साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कारदाता के समक्ष स्वयं को तुच्छ बौना तो नहीं महसूस कर रहा। प्रश्नकर्ता जितना सुचिंतित, आत्मविश्वासयुक्त, विवेचन-विश्लेषण करने वाला होगा - साक्षात्कार उतना ही जीवंत, तथ्यात्मक, ठोस, विविधायामी, अनेक पक्षों का उद्‌घाटन करने वाला होगा। साहित्यिक साक्षात्कार की भी यही विशेषताएँ हैं जो उसे महत्वपूर्ण बनाती हैं।

हिंदी में साक्षात्कार की परंपरा

हिंदी साहित्य के इतिहास में यदि साक्षात्कारों की परंपरा खोजें तो इस विधा की शुरुआत हिंदी के प्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने पत्र 'विशाल भारत' में 'रत्नाकर जी से बातचीत' (1931) तथा 'प्रेमचंद जी के साथ दो दिन' (1932) के साथ की। (हिंदी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेंद्र) इसके पश्चात् हिंदी में साक्षात्कारों का सिलसिला चल निकला। बेनीमाधव शर्मा की पुस्तक 'कवि दर्शन' इस विधा की प्रथम स्वतंत्र कृति मानी जाती है जिसमें तत्कालीन प्रसिद्ध साहित्यकारों - अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्यामसुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त आदि से लिए गए साक्षात्कार, संग्रहीत हैं। साक्षात्कारों से संबंधित सर्वाधिक चर्चित कृति डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' कृत 'मैं इनसे मिला' (1952) ग्रंथमाला है। इसके दो भागों में साहित्यकारों से तत्कालीन साहित्यिक परिवेश तथा उनके रचनाकर्म पर बातचीत करके लेखक के मन पर पड़े प्रभावों को लिपिबद्ध किया गया है। भले ही, इनमें विषय-विस्तार सीमित हो अथवा कुछ ही समस्याओं का निदर्शन-केंद्रीकरण किया गया हो किंतु संग्रहीत साहित्यकारों के कृतित्व तथा उनके जीवन दर्शन को समझने क लिए यह कृति महत्वपूर्ण है। डॉ. रमेश कुंतल मेघ के अनुसार - 'अब इंटरव्यू में अतीतकालीन पात्रों से भी फैंटेसी या स्वप्न पद्धति में साक्षात्कार मिलता है। इस शैली में देशकाल की काफी उलट-पुलट (टाइम शिफ्ट) हो जाती है। यहाँ लेखक प्रश्नकर्ता के रूप में आता है और खुद भी एक पात्र होता है। (समसामयिक हिंदी-साहित्य - सं. नगेंद्र, भारत भूषण अग्रवाल) मेघजी ने इसके उदाहरण रूप कथाकार राजेंद्र यादव की कृति - 'एंटन चेखव : एक इंटरव्यू' का उदाहरण दिया है जिसे इस विधा की प्रौढ़ उपलब्धि मानते हुए उन्होंने लिखा है : 'यह एक काल्पनिक इंटरव्यू है जो चेखव से संबद्ध और चेखव की कुछ अत्यंत प्रसिद्ध रचनाओं, पात्रों, संस्मरणों, आलोचनाओं आदि पर आधारित है। इस कृति में महान् रूसी कहानीकार का जीवन कृतित्व, देश, कृतियों के पात्र, कला की समस्याओं, साहित्य आलोचनाओं आदि का भी सर्वेक्षण हुआ है। आधार भी प्रामणिक है, जैसे चेखव द्वारा व्यक्तियों को लिखे गए पत्र, कुप्रिन, तॉलस्तॉय, गोर्की, स्टेनिलोव्स्की आदि के संस्मरण। इसी प्रकार इधर लक्ष्मीचंद जैन, शरद देवड़ा आदि ने साक्षात्कार संबंधी पुस्तकें लिखी हैं। इधर कुछ साहित्यिक व्यक्तित्वों को केंद्र में रखकर स्वतंत्र साक्षात्कार पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं, तो, महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं मे साहित्यकार-कलाकार चिंतकों से सीधा विचार-विमर्श भी किया गया है। ये सभी साक्षात्कार विधा की गतिशीलता को घोषित करते हैं।

आशा है, अब आप साक्षात्कार-विधा तथा हिंदी में साक्षात्कार-विधा के विकास के बारे में जान गए होंगे। अब हम इस इकाई के मुख्य पक्ष पर आते हैं। अर्थात् श्रीकांत वर्मा द्वारा ऑक्टेवियो

पॉज़ से लिए गए साक्षात्कार के अध्ययन-विश्लेषण पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इस क्रम में सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि ऑक्टेवियो पॉज़ कौन हैं? यदि रचनाकार हैं तो उनके व्यक्तित्व-कृतित्व का महत्व क्या है? जीवन-जगत के प्रति उनकी दृष्टि क्या है?

26.3 साक्षात्कारदाता-पात्र-के चयन का औचित्य

ऑक्टेवियो पॉज़ लैटिन अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान कवि-चिंतक हैं। इनकी गिनती 'लैटिन अमेरिकी दुनिया के दो बड़े' कवियों में की जाती है। पहले हैं चिली के पाब्लो नेरूदा, जो समाजवादी थे और दूसरे हैं, मेक्सिकों के ऑक्टेवियो पॉज़, जो अतियथार्थवादी और स्वच्छंतावादी थे। श्रीकांत वर्मा ने प्रस्तुत साक्षात्कार के प्रारंभ में दोनों कवियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो सूचनात्मक होने के साथ-साथ रोचक भी है। श्रीकांत वर्मा ने पॉज़ से दो बार लंबी बातचीत की। पहली बार तब जब वे मेक्सिकों के राजदूत बनकर (1962-68) भारत आए थे। दूसरी बार तब जब उन्होंने 1968 में मेक्सिको के छात्र असंतोष के दमन के मुद्दे पर अपनी सरकार के विरोध में राजदूत पद से त्यागपत्र दे दिया था।

आक्टेवियो पॉज़ - कवि और कला चिंतक के रूप में

आइए, अब इनके साहित्यिक-सांस्कृतिक व्यक्तित्व को थोड़ा और गहराई से जानें। पॉज़ अपने समय से गहरे में जुड़े बीसवीं शती के ऐसे बुद्धिजीवी कवि हैं जिन्होंने अपने सुदीर्घ जीवनकाल में अनेकानेक काव्यांदोलनों, कलाचिंतन, दर्शन, प्राचीन धर्म, नृविज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति में गहरी रुचि ली। राजनयिक-कर्म किया। मेक्सिको की राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाई। स्पेनी-अमेरिकी साहित्य के अतिथि प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। पूर्वी धर्म-दर्शन में रुचि ली। जिसका इनके साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। कविता-संग्रहों के अतिरिक्त इनके बीस से अधिक निबंध संग्रह प्रकाशित हैं जो इनके साहित्य-संस्कृति संबंधी दृष्टिकोण को समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं तथा मैक्सिकों के जातीय इतिहास एवं संस्कृति को उद्घाटित करते हैं। उल्लेखनीय है कि इन्हें 1970 में साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया।

श्रीकांत वर्मा ने ऑक्टेवियो पॉज़ से बातचीत ऐसे दौर में की है जब विश्व स्तर पर बुद्धिजीवियों के बीच एक तरह का बौद्धिक संकट व्याप्त था। खास तौर पर वे लेखक और बुद्धिजीवी जो एक ओर पूंजीवादी व्यवस्था से असंतुष्ट थे, लेकिन जिन्हें मार्क्सवाद और समाजवादी व्यवस्था में भी मानव सभ्यता के संकट का समाधान नज़र नहीं आता था। श्रीकांत वर्मा और ऑक्टेवियो पॉज़ में कई वैचारिक समानताएँ हैं। वे दोनों ही वर्तमान समय के संकट को बौद्धिक और दार्शनिक धरातल पर देखते हैं और उसी स्तर पर उसका समाधान प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। जबकि दुनिया का और खासतौर पर तीसरी दुनिया का संकट उनकी गरीबी, भुखमरी और बदहाली में है। यदि इस समस्या का समाधान समाजवाद के पास नहीं है, तो पूंजीवाद के पास तो बिल्कुल भी नहीं है क्योंकि वही तो इस संकट का कारण है। ऐसे में अपने समय के संकट को नैतिक और बौद्धिक स्तर पर समझने का प्रयास एक तरह से उससे पलायन करना है। इस साक्षात्कार में हम प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनों में इस प्रवृत्ति को देख सकते हैं।

लेकिन ऑक्टेवियो पॉज़ में दूसरे तरह का अंतर्विरोध भी हैं। वे राजनीति को नकारते हैं। एक तरह से उन सभी लेखकों को अवमूल्यित करते हैं जो साहित्य और कला को समाज से निरपेक्ष होकर नहीं देखते। लेकिन उनका अपने देश की बूर्जुआ राजनीति से गहरा संबंध भी है। जापान और भारत में उनका राजदूत बनना इसी संबंधों का परिणाम है। यह भी जानना दिलचस्प है कि ठीक ऐसा ही संबंध बाद में श्रीकांत वर्मा का भी बना। छात्र आंदोलन के दमन के विरोध में ऑक्टेवियो पॉज़ का राजदूत के पद से त्यागपत्र दे देना सत्ता और जनता के बीच के द्वंद्व का भी प्रतीक है। वे छात्र आंदोलन को ऐसे राजनीति-निरपेक्ष विद्रोह के रूप में देखते हैं, जैसा विद्रोह आठवें दशक में हमारे यहां भी 'संपूर्ण क्रांति' के नाम से उठा था और हम सभी जानते हैं कि उसकी परिणिति क्या हुई। 'संपूर्ण क्रांति' का नेतृत्व करने वाले प्रायः सभी

छात्र नेता बाद में सत्ता-प्रतिष्ठानों के हिस्से बन गए और वे परिस्थितियों में कोई सकारात्मक बदलाव लाने में कामयाब नहीं हो सके।

ऑक्टेवियो पॉज़ कवि और चिंतक हैं इसलिए यह स्वाभाविक है कि वे अपनी बात को बौद्धिक विमर्श में रखें। लेकिन उनके दृष्टिकोण में उस उत्तर आधुनिक विचारों की झलक देखी जा सकती है जो आधुनिकता के कथित विरोध में सामने आए लेकिन जिस पर शीतयुद्धीय विचारों का भी प्रभाव था।

यहाँ यह रेखांकित करना होगा कि इन्होंने अपने साहित्य में आधुनिकता के स्वरूप की व्याख्या की तथा अपने समय के विश्व की असमंजसपूर्ण खंडित किंतु सच्ची तस्वीर उभारी। इनके साहित्य में जहाँ आधुनिक सभ्यता एवं साहित्य पर मंडराते संकट को अभिव्यक्ति मिली वहीं सृजन के क्षेत्र में लैटिन-अमेरिकी अस्मिता की बेचैनी और दर्प को स्वर मिला। पॉज़ के लिए कविता मनुष्य को सार्थक बनाने का रास्ता दिखाती है। यहीं उनका यह भी मानना है कि विज्ञान और टैक्नोलॉजी के रास्ते पर चलती मनुष्यता अपने लक्ष्य से भटक गई, अराजक हो गई है। द्वितीय विश्व युद्ध से क्षतिग्रस्त मानव सभ्यता, मानव मूल्य तहस-नहस हो गए हैं। पॉज़ अपने साहित्य में इससे निरंतर जूझते हैं पॉज़ के विचारों में भले ही राजनीति-विरोध झलकता हो, पर वे राजनीति का विरोध नहीं, राजनीति में आती मूल्यहीनता का विरोध करते हैं। अधिकांश वामंपथी लैटिन-अमेरिकी बुद्धिजीवियों के बीच वे निष्पक्ष बुद्धिजीवी की भूमिका निभाते हैं। वे चाहते हैं कि मनुष्य विज्ञान और तकनीक का उपयोग अपने ढंग से करे। पर ऐसा हो नहीं पा रहा। लैटिन-अमेरिका, अफ्रीका व एशिया के देश अपनी-अपनी अस्मिता के लिए आर-पार की लड़ाई लड़ रहे हैं। नई उपभोक्ता संस्कृति ने इनके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। पूंजीवादी औपनिवेशिक ताकतें नया-नया रूप धारण कर जोश-खरोश के साथ खड़ी हो रही हैं। मनुष्य आज भौंचक है। संस्कृति भ्रंश और मूलयहीनता का अंधेरा गहरा रहा है। जिसे ऑक्टेवियो पॉज़ ने भी अपने साहित्य में यथाशक्ति उजागर किया है।

26.4 साक्षात्कार में उठे प्रश्नों का विवेचन

अब आते हैं श्रीकांत वर्मा द्वारा लिए गए ऑक्टेवियो पॉज़ के साक्षात्कार पर। साक्षात्कार में श्रीकांत वर्मा ने यह बताया है कि 'पॉज़ सिर्फ एक कवि नहीं हैं। वह एक महान् विचारक भी हैं। उन्होंने कला पर जो पुस्तकें लिखी हैं वे अमूल्य दस्तावेज़ हैं। दुशां पर उनकी पुस्तक एक अनोखी कला-व्याख्या है। [मार्सल दुशां (1887-1968) फ्रांस मे जन्मे अमेरिकी चित्रकार] दूसरे, उनमें सभी प्रकार की व्यवस्थाओं के प्रति प्रश्नाकुलता, विद्रोह तथा मानव गरिमा की प्रतिष्ठा विद्यमान है। बल्कि ये ही उनके चिंतन के आधार हैं। तीसरे, पॉज़ पर भारत की अमिट छाप है। जिनका प्रमाण उनकी भारत संबंधी अनेक कविताओं में मिलता है। चौथे, भारतीय संगीत को वे विश्व सभ्यता की महान् उपलब्धि मानते हैं। भारतीय मूर्तिकला पर उन्होंने अनेक अनोखी टिप्पणियाँ की हैं। उक्त सभी विशेषताएँ उनके समृद्ध सांस्कृतिक व्यक्तित्व को उभारती हैं। पॉज़ का अभी कुछ अर्सा पहले ही निधन हुआ है, लेकिन वे अंत तक बौद्धिक दृष्टि से सक्रिय रहे।

वैचारिक प्रतिबद्धता

साक्षात्कार में सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न वैचारिक प्रतिबद्धता को केंद्र में रखकर उठाया गया है। उस समय विश्व के बौद्धिक परिदृश्य पर इस विषय पर गंभीर बहस चल रही थी। जिसकी अनुगूँज भारतीय बौद्धिक जगत में भी विद्यमान थी। श्रीकांत वर्मा ने इस प्रश्न पर अपेक्षाकृत लंबी बहस की। पॉज़ ने स्पष्ट किया कि वे इसे साहित्यिक समस्या नहीं मानते। वे इसे पश्चिम में 'दो महायुद्धों के बीच कम्युनिस्ट पार्टी के उठान के दिनों में और नात्सी खतरों के संदर्भ में उठाया गया' सवाल मानते हैं। उनके अनुसार 'उस समय यह सवाल राजनीतिक कारणों से और राजनीति में पैदा हुआ था।..... उस समय भी साहित्य को कमिटमेंट के नाम

पर राजनीति और शिविरों में घसीटा गया था। साहित्य के लिए कमिटमेंट तथा 'एण्टीकमिटमेंट' जैसी बात कोई अर्थ नहीं रखती। श्रीकांत वर्मा द्वारा प्रति प्रश्न किए जाने पर कि 'कमिटमेंट एक राजनीतिक ही क्यों नैतिक सवाल भी हो सकता है। राजनीतिक और नैतिक दोनों ही धरातलों पर इसे उठाने की कोशिश पिछले दिनों सार्त्र ने की है।' इस पर इतिहास का हवाला देते हुए पॉज़ स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि सन् तीस से चालीस के बीच जब सारा यूरोप 'इन्गेज्ड' की बात कर रहा था, सार्त्र 'डिस इन्गेज़' कला की बात कर रहे थे और अब जब इंग्लैंड और फ्रांस के कुछ लेखकों को छोड़ पश्चिम के अधिकांश लेखकों के लिए यह प्रश्न कोई प्रश्न नहीं रहा, तब (जर्मन आधिपत्य के दिनों से) सार्त्र के लिए यह समस्या साहित्य की सबसे बड़ी समस्या बनी हुई है।' अपने एक अन्य मित्र और अस्तित्ववादी चिंतक अल्बेयर कामू, का उदाहरण देते हुए पॉज़ बताते हैं कि वे भी सार्त्र के इन विचारों से सहमत नहीं हैं। उनका निष्कर्ष है कि 'सार्त्र पर राजनीति सवार है।' इसी राजनीतिक आग्रह के चलते पॉज़ सार्त्र के साहित्य से प्रभावित नहीं हैं। उनकी मान्यता है कि 'सार्त्र और कामू दोनों ही महान् लेखक नहीं है .... मैं उन्हें एक महत्वपूर्ण रचनाकार नहीं, मगर मौलिक विचारक जरूर मानता हूँ और मेरे मन में अगर उनके प्रति आदर है तो वह उनके साहित्य के कारण नहीं, बल्कि उनके आदर्शों के कारण है, जो सही या गलत जैसे भी हों, उनके अपने हैं। पॉज़ के कथन में यह अंतर्विरोध है कि वे सार्त्रक साहित्य से वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण प्रभावित नहीं है या उनके साहित्य में ही कोई दम नहीं है, इसका खुलासा नहीं करते।

ऑक्टेवियो पॉज़ का स्पष्ट मत है कि 'कोई भी आदर्श (या विचार) कला का प्रतिमान नहीं हो सकता।' वे श्रीकांत वर्मा के इस मत से सहमत नहीं होते कि जर्मन नाटककार ब्रेख्त तथा रूसी कवि मायकोव्स्की के विचार व साहित्य 'इस प्रकार संगठित हो गए कि कला के लिए एक नया ही प्रतिमान तैयार हो गया।'। उनके अनुसार 'ब्रेख्त की कला का रहस्य साम्यवाद नहीं बल्कि ब्रेख्त के अंदर का विद्रोही है। स्वभाव में, रचना में, यह विद्रोह ही लेखक को लेखक बनाता है, फिर इस विद्रोह की कर्मभूमि कुछ भी हो। विद्रोह अपने अंदर होता है, बाहर से उसे जुटाया नहीं जा सकता।' विचारधारा के नाम पर उसे बाहर से आयातित नहीं किया जा सकता। इसी से पॉज़ साहित्य के लिए 'बड़ा खतरा तब महसूस करते हैं जब 'कमिटमेंट' को साहित्य के मूल्यांकन के लिए एक मानदंड मान लेने का आग्रह किया जाता है।' पॉज़ पूछते हैं कि क्या विचारधारा किसी लेखक के बड़े होने का निर्णयात्मक कारण होती है? उदाहरणों से पुष्ट करते हुए वे कहते हैं : 'खजुराहों, साँची और कोणार्क के कारीगर और कलाकार, कलाकार थे या प्रचारक? धर्म अगर उनकी कला की परिणति है तो यह न उनका दोष है, न उपलब्धि। वॉन गॉग किसके प्रति 'कमिटेड' थे?' इसलिए उनकी यह मान्यता है कि 'कमिटमेंट हमेशा मनुष्य का मनुष्यता के प्रति कलाकार का कला के प्रति होगा।' दरअसल पॉज़ साहित्य को अपने परिवेश से काटकर समाज निरपेक्ष, मात्र कलाकृति के रूप में देखने का आग्रह कर रहे हैं जब कि सार्त्र या उनके जैसे अन्य अनेक लेखक, रचनाकार को अपने समय, परिवेश व इतिहास का प्रतिनिधि मानते हैं। उसके द्वारा प्रयुक्त शब्द महज शब्द भर न होकर गतिशील कर्म बन जाता है। प्रतिबद्ध लेखक मानता है कि ऐसा लेखक जो कुछ भी अपने साहित्य में उद्घाटित करता है उससे पाठक प्रभावित होता है, वह उसमें बदलाव लाता है। सार्त्र का मन्तव्य है कि जब तक लेखक के पास बदलाव लाने की कोई निश्चित योजना न होगी, वह अपने साहित्य में क्या उद्घाटित कर सकेगा? मगर पॉज़ इस 'योजनाबद्ध' साहित्य को साहित्य ही नहीं मानते। उनकी दृष्टि में विचारधाराएँ समाज के चेहरे पर पड़ा हुआ झूठा पर्दा है। धीरे-धीरे वे उतर रही हैं। विचारधाराओं का युग समाप्त हो रहा है और अब हम यथार्थ को अधिक नज़दीक से देख सकते हैं।

भारतीय कला और साहित्य पर विचार

अतियथार्थवाद से प्रभावित होने के कारणा ऑक्टेवियो पॉज़ प्रचलित सिद्धांतों से विरोध प्रकट करते हैं। वे स्वप्न तथा अवचेतन मानस पर अधिक विश्वास करने वाले कवि-चिंतक दिखाई देते हैं। इसीलिए वे राजनीतिज्ञों और इतिहासकारों को सतह पर घटित होते सत्य को देखने वाले

तथा कवि-कलाकार को भीतर के अविज्ञप्त सत्य को पहचानने वाले लेखक मानते हैं। उनकी दृष्टि में तमाम इतिहासशास्त्रियों की अपेक्षा जॉर्ज ऑरवेल जैसे लेखक सत्य के अधिक नज़दीक हैं। वे भारतीय लेखकों से भी यही आशा करते हैं कि वे राजनीति से दिग्भ्रमित नहीं होंगे। ब्रिटेन और अमेरिका को ही पश्चिम या काफी हद तक संसार मानकर नहीं चलेंगे। उनकी यह मान्यता भी दिलचस्प है कि 'भारतीय लेखक पश्चिमी साहित्य के संपर्क में पूरी तरह आए ही नहीं।' इसलिए उनके विचार खंडित है तथा वे आधे-अधूरे सत्य को ही पाकर संतुष्ट हो जाते हैं। विवेच्य साक्षात्कार में उनका यह मत है कि भारतीय बुद्धिजीवियों में बौद्धिक वातावरण का बड़ा अभाव है। प्रतिभा के अभाव से लेकर इसके दूसरे अन्य अनेक कारण हो सकते हैं। वे कहते हैं : 'मुझे तो सबसे अधिक हैरानी और निराशा होती है। छोटे-छोटे देशों के समाचार-पत्र भी देश-विदेश के साहित्य और कला में गहरी दिलचस्पी रखते हैं। मगर यहाँ आकर मैंने देखा कि उन्हें राजनीति की ओछी से ओछी बातों में रुचि है, साहित्य से उन्हें कोई सरोकार नहीं। यहाँ तक कि उनके 'साप्ताहिक संस्करण' भी साहित्य और कला का मखौल जान पड़ते हैं। एक लोकप्रिय पत्र लोकरुचि को आधुनिक बनाने में कितना सहायक हो सकता है, इसका उन्हें अंदाज़ ही नहीं।' उक्त कथन कुछ अंश में सही होते हुए भी सच्चाई की पूरी तस्वीर पेश नहीं करता। दरअसल पॉज़ इन्हें परिचालित करने वाली शक्तियों, उन कारणों की खोज में नहीं जाते या उसे दबा जाते हैं, जिस कारण यह स्थिति पैदा हुई है। संपादक और पत्रकार पत्र मालिक के सामने स्वयं को क्यों पंगु महसूस करते हैं? वे उनके हाथों की कठपुतली बनने को क्यों विवश हो जाते हैं? जब तक इन प्रश्नों में गहरे नहीं उतरा जाएगा - विचार-विश्लेषण सही दिशा की ओर उन्मुख नहीं हो सकेगा और न ही सही निष्कर्ष निकलेंगे।

पॉज़ प्रसिद्ध कला-समीक्षक रहे हैं। अतः साक्षात्कर्ता श्रीकांत वर्मा ने उनसे अमूर्त कला आंदोलन पर उनके विचार जानने चाहे। उन्होंने इस विषय की सोदाहरण चर्चा करते हुए कहा कि 'अमूर्त कला की दुनिया में अत्यधिक नकल है और इसका कारण यही है कि उसकी खोज का क्षेत्र संवेदना नहीं, फॉर्म है।' इसका अर्थ यह नहीं कि चित्रकला की दुनिया में अवरोध या सांस्कृतिक संकट आ गया है। दरअसल, वहाँ 'गतिरोध (उतना) नहीं, (जितनी) गति है (या) भयानक गति है।'

साक्षात्कार के उत्तरांश में बहस छात्र-असंतोष, उनकी सरकार द्वारा उसके दमन तथा इसके विरोध स्वरूप पॉज़ के त्यागपत्र पर केंद्रित हो जाती है। इस बहाने पॉज़ अपने समय के ज़बरदस्त संकट से गुज़रते संसार का गहन विश्लेषण करते हैं और मानते हैं कि राजनीतिक क्रांतियां अपना अर्थ खो चुकी हैं, क्योंकि उनका लक्ष्य किसी न किसी तरह सत्ता तक पहुँचना था। इसीलिए पॉज़ का यह निश्चित मत है कि 'समाज को बदलने के लिए विद्रोह' आवश्यक है, क्रांति नहीं। विद्रोही गहरे अर्थों और समग्र व्यक्तित्व की तलाश करता है। सजग व्यक्तित्व के लिए एकमात्र रास्ता रह गया है विरोध और विद्रोह का।' स्पष्ट है कि यह विरोध और विद्रोह समाज में कला और बुद्धिजीवियों द्वारा स्वरूप ग्रहण करता है। पश्चिमी सभ्यता के खोखले वायदों-कथनों का पर्दाफ़ाश भी वे ही कर सकते हैं। पॉज़ स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि 'भारत यदि भुखमरी के कगार पर खड़ा है तो पश्चिम परमाणु बमों के ढेर पर खड़ा है इसलिए पश्चिमी सभ्यता का यह गर्व झूठा है कि उसने इतिहास के प्रश्नों को सुलझा लिया है। प्रश्न सुलझने की बजाय उलझ गए हैं।' 'पिछली शताब्दी का दार्शनिक और द्रष्टा कार्लमार्क्स' भी इन प्रश्नों को सुलझाने में सफल नहीं हो पाया। 'मार्क्स ने वर्ग सत्ता की स्थापना का स्पष्टीकरण किया था। किंतु आगे चलकर वर्ग सत्ता निर्मम राज्य सत्ता में परिणत हो गई। आज मनुष्य के 'एलीनिएशन' के लिए राज्य सत्ताएँ जिम्मेदार हैं।' उनके अनुसार भारत इन सबसे अछूता शायद इसलिए बना रह सका क्योंकि उसने अपने अस्तित्व के लिए राजनीति के स्तर पर नहीं, बल्कि दर्शन के स्तर पर संघर्ष किया।

श्रीकांत वर्मा ने जब यह प्रतिप्रश्न किया कि आज के अर्थ और राजनीति के दाँवपेंची युग में लड़खड़ाते भारत से क्या यह आकांक्षा करना उचित है कि वह मात्र दर्शन के स्तर पर जीवित

रहे तो इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए पॉज़ कहते हैं कि वे भारत से राजनीति या आर्थिक विकास के क्षेत्रों से संन्यास ले लेने की अनुशंसा नहीं कर रहे हैं। वरन् 'आज हमें एक ऐसी विश्व सभ्यता की आवश्यकता है जो वैज्ञानिक आकांक्षा और कविता के आंतरिक अनुशासन का समन्वय हो' जिसकी संभावना उन्हें भारत में ही नज़र आती है। विश्व को भविष्य के लिए दृष्टि संभवतः भारत से ही मिल सकती है। उनके मतानुसार यह अतीतोन्मुख भविष्य दृष्टि नहीं है। वैसे भी जीवन-प्रवाह को अतीत और भविष्य में बाँटकर नहीं देखना चाहिए। बौद्ध धर्म का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि 'बौद्ध धर्म अतीत ही नहीं, आज को लिए भी प्रासंगिक है। मैं सभी धर्म तंत्रों में बौद्ध धर्म से सबसे अधिक प्रभावित हुआ क्योंकि वह अधिक से अधिक दर्शन और कम से कम धर्म है, जबकि इस्लाम अधिक से अधिक धर्म और कम से कम दर्शन है। जो धर्म जितना अधिक दर्शन होगा वह उतना ही कालजयी होगा और जो दर्शन जितना ही अधिक धर्म होगा वह उतना ही अधिक क्षणभंगुर होगा।'

साक्षात्कार के अंतिम चरण में पॉज़ भारतीय धर्म-संस्कृति ही नहीं भारतीय कलापद्धतियों से भी स्वयं को प्रभावित मानते हैं। भारतीय लोक कला को भारत के जीवन का अविभाज्य अंग मानते हुए वे कहते हैं कि भारतीय बूर्जुआ इस लोक संस्कृति को नष्ट कर रहा है। इस जघन्य कृत्य का दोषी वे उस अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे वर्ग को मानते हैं जो सत्ता में बैठा हुआ है - 'मुझे सबसे अधिक घृणा यहाँ के अंग्रेज़ी पढ़े वर्ग से है, जो एक ओर साहित्य और संस्कृति का स्वांग करता है, दूसरी ओर अपने ही देश की सांस्कृतिक आकांक्षाओं को नष्ट करता है। इसने कला को संग्रहालय की चीज़ बना दिया है। इसकी रुचि घटिया और भद्दी है। और यही यहाँ का शासक बन बैठा है। यह पाखंडी और नक्काल वर्ग है। इसने अंग्रेजी साहित्य का भी अधूरा अध्ययन किया है। शेक्सपीयर उसके लिए ड्राइंग रूम की सजावट की चीज़ है जब तक यह वर्ग बना रहेगा तब तक भारत का साहित्य और कला विकसित नहीं हो सकते।' बल्कि इससे भी आगे जाकर उन्हें लगता है कि ब्रिटेन और अमेरिका भारत के इन अंग्रेजीपरस्त शासक वर्ग के माध्यम से आज भी भारत में पूर्ववत् बने हए हैं।

भारत के बुद्धिजीवियों से पॉज़ को गहरा असंतोष है क्योंकि वे अक्सर राजनेताओं के पिछलग्गू या अकर्मण्य दास बन जाते हैं। जबकि 'राजनीति को बदलने के लिए राजनीति से विद्रोह और समाज को बदलने के लिए समाज की आलोचना, गहरी शंका आवश्यक होती है।' उन्हें चित्रकार स्वामीनाथन, पत्रकार शामलाल, साहित्यकार नीरद चौधरी सरीखे बुद्धिजीवियों और कलाकारों से आशाएँ हैं क्योंकि ये प्रतिष्ठित मूल्यों से उदासीन हैं, इनमें शंका की प्रवृत्ति है और ये आलोचनात्मक दृष्टि रखते हैं। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि पॉज़ भारत के उन्हीं संस्कृतिकर्मियों से परिचित थे जो अंग्रेज़ी के माध्यम से अपनी पहचान बना सके हैं। जनता के बीच निरंतर सक्रिय साहित्यकारों-बुद्धिजीवियों के विषय में उन्हें जानकारी नहीं है। अन्यथा वे उपर्युक्त तीन नाम या इन जैसे लेखकों के नाम लेकर संतुष्ट न हो जाते। निश्चय ही, यह भारतीय परिदृश्य का एकांगी रूप है, पूरी तस्वीर नहीं।

सारांश यह कि विवेच्य साक्षात्कार में मात्र कवि, कला-समीक्षक, के रूप में उपस्थित न होकर पॉज़ एक ऐसे विचारक के रूप में उभरते हैं जो अपने समय, सभ्यता के ज्वलंत प्रश्नों से टकराता है, अपने समय में आ रही खामियों को गहराई से पहचानता है। उन्हें दूर करने की चिंता में ऊभचूभ होता, झुंझलाता उन्हें विश्लेषित कर एक रोशनी खोजने का प्रयास करता है। वह वर्तमान सभ्यता की एकांगिता को रेखांकित कर उसका विरोध करता पाया जाता है। उनका स्पष्ट मत है कि राजनीतिक क्रांतियों, विचारधाराओं, सभ्यताओं ने अपना दायित्व पूरा नहीं किया। वे समग्र मानव-जीवन पर, उसकी प्रतिष्ठा पर ध्यान नहीं दे पाई है। यही कारण है कि वर्तमान समय अराजक, मूल्यहीन और राज्यसत्ताएँ निरंकुश होती चली गई हैं। राजनीति अपने को सत्ता-प्रतिष्ठानों में सुरक्षित रखने की रणनीति अपनाती जन-निरपेक्ष होती चली गई है। साहित्य-संस्कृति-कला, जो मानव जीवन को मूल्यवत्ता प्रदान करती है, उसे इन्होंने अपना पिछलग्गू बना लिया है। इस जड़ व्यवस्था को तोड़ने का सिर्फ़ एक ही उपाय है : सचेत

संस्कृति-कर्मियों द्वारा विरोध और विद्रोह। इस विरोध-विद्रोह की संभावनाएँ पॉज़ को कवि-कलाकारों-बुद्धिजीवियों में ही नज़र आती हैं।

कथनीय है कि हिंदी की नई कविता के सुपरिचित हस्ताक्षर श्रीकांत वर्मा स्वयं मोहभंग, आस्था-अनास्था के बीच झूलते, प्रतिष्ठित मान मूल्यों का विरोध करते, प्रतिबद्ध प्रगतिशील विचारों को खारिज कर आगे बढ़ने वाले कवि हैं। वैचारिक प्रतिबद्धता की अपेक्षा संशय, शंकाकुल दृष्टि, बेचैनी को वे अपने साहित्य के लिए अधिक प्रामाणिक एवं प्राणवान् मानते रहे हैं। विश्व स्तर पर चल रहे द्वंद्व और घटनाएँ - द्वितीय विश्वयुद्ध, लोकतंत्र, पूंजीवाद का विकास, साम्यवाद, उपभोक्ता संस्कृति उन्हें बार-बार सोचने को विवश करते हैं। वे अपने साहित्यिक कर्म में भी इधर से उधर भटकते हैं, कोई निश्चित राह नहीं खोज पाते हैं। ऐसे में उन्हें ऑक्टेवियो पॉज़ जैसा व्यक्तित्व आकर्षित करता है, जो मार्क्स विरोधी तो नहीं है पर मार्क्स और उसके दर्शन को अपर्याप्त मानता है। यही कारण है कि श्रीकांत वर्मा ऑक्टेवियो पॉज़ से प्रतिबद्धता के सवाल पर बातचीत करते हैं पर उसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उठा नहीं पाते, कोई दिशा नहीं दे पाते। इससे हानि यह होती है कि जो साक्षात्कार एक सार्थक बहस का रूप ग्रहण कर सकता था, वह कहीं सतही, कहीं अधूरा रह जाता है। इतना अवश्य है कि विश्व स्तर पर साहित्य, संस्कृति के क्षेत्र में चल रही हलचलों, गतिविधियों, घटनाओं की सूचना इससे एक जगह मिल जाती है। लेकिन कोई गहरी अंतर्दृष्टि इससे नहीं मिल पाती।

26.5 साक्षात्कार की लेखन-शैली

अब, एक दृष्टि उक्त साक्षात्कार के स्वरूप-संयोजन पर डालें। श्रीकांत वर्मा सर्वप्रथम साक्षात्कारदाता ऑक्टेवियो पॉज़ के व्यक्तित्व, उनके विचारों-निष्ठाओं, उनके सांस्कृतिक महत्व को उजागर करते हैं। साथ ही, विश्व के बुद्धिजीवियों के बीच चल रहे 'कमिटमेंट' संबंधी प्रश्न को वे इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि वह यथासंभव पाठकों के समक्ष स्पष्ट हो जाय। इसके लिए अतियथार्थवादी कला-आंदोलन तथा दार्शनिक हीडेग्गर या सार्त्र, कामू, काफ्का के संदर्भों से बहस के पक्ष-प्रतिपक्ष को उभारते हैं। भले ही, प्रति प्रश्न के रूप में वे उन बिंदुओं या उस समय के अंतर्विरोधों को नहीं उभार पाते पर बहस को शब्दों के जाल में भी नहीं उलझाते। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

'हाँ! शायद आपको नहीं मालूम होगा और मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि अपने अन्य सुर्रियलिस्ट दोस्तों की तरह मैं भी एक अर्से तक मार्क्सवादी रहा हूँ और अंत में मैंने पाया कि इतिहास ने हमें धोखा दिया और हमने अपने-आपको। ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाने के बाद ही लेखक के सामने सबसे बड़ा संकट उपस्थित होता है। सबसे बड़ा संकट यही अनुभव है कि सोचने के लिए आगे क्या है? मगर यही एक और भी नयी सृष्टि की शुरुआत है।....'

वे अपनी साफ़-सुथरी बातचीत की भाषा शैली में विश्व कविता के महत्वपूर्ण कवियों-साक्षात्कारों के उदाहरणों (ब्रेख्त, मायकोव्स्की, बीट कविता) से विषय को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। इससे पाठक विषय को भली-भाँति हृदयंगम कर लेता है। यही शैली उनके समूचे साक्षात्कार में विद्यमान है। श्रीकांत वर्मा का भाषा की दृष्टि से कहीं यह आग्रह नहीं है कि वे शुद्ध साहित्यिक शब्दावली का प्रयोग करें। संप्रेषणीयता पर उनका ध्यान बराबर बना रहता है। इसलिए पाठक शीघ्र ही साक्षात्कार पढ़ते समय साक्षात्कर्ता के साथ हो लेता है। कथनीय है कि हिंदी-उर्दू का झगड़ा उनके यहाँ नहीं मिलता। यही नहीं, प्रचलित अंग्रेज़ी शब्द भी सहज प्रवाह में उनके यहाँ आ जाते हैं। आशय यह है कि किसी विशेष प्रकार का शब्दभंडार या भाषा शैली का आडम्बर रचने का प्रयास श्रीकांत वर्मा नहीं करते। अतः यह कहा जाए कि संप्रेषणीयता इस साक्षात्कार के गद्य की पहचान है, तो अनुचित न होगा।

26.6 सारांश

एम.ए. हिंदी के बीज पाठ्यक्रम 'नाटक और अन्य गद्य विधाएँ' के अंतिम खंड की अंतिम इकाई है। इस इकाई में आपने हिंदी के वरिष्ठ कथाकार और कवि श्रीकांत वर्मा द्वारा मेक्सिको के कवि और कला चिंतक ऑक्टेवियो पॉज़ से लिए गए साक्षात्कार की विशेषताओं का अध्ययन किया है।

साक्षात्कार पत्रकारिता की एक महत्वपूर्ण विधा है। इसमें पत्रकार किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति से बातचीत करता है, उससे सवाल पूछता है। पाठक महत्वपूर्ण लोगों के विचारों को जानना चाहते हैं। साक्षात्कार में जिनसे साक्षात्कार लिया जाता है, वह तो महत्वपूर्ण होता ही है, साक्षात्कार लेने वाला भी कम महत्व नहीं रखता। साक्षात्कार की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि किस तरह के प्रश्न-प्रतिप्रश्न पूछे गए हैं।

हिंदी में साक्षात्कार लेने की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है। लेकिन अब इसकी एक समृद्ध परंपरा बन गई है। बनारसीदास चतुर्वेदी से लेकर वर्तमान साहित्यिक-असाहित्यिक पत्रकारिता तक साक्षात्कार लेने की परंपरा गतिशील है। आमतौर पर जब तक लेखक दूसरे लेखक से साक्षात्कार लेता है तो वह एक तरफा बातचीत नहीं रहती बल्कि वहाँ सवाल पूछने वाला भी उतना ही महत्वपूर्ण हो जाता है।

जिस साक्षात्कार का आपने अध्ययन किया है वह साहित्यिक साक्षात्कार का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह एक भारतीय लेखक (श्रीकांत वर्मा) द्वारा दूसरे देश (मेक्सिको) के लेखक (ऑक्टेवियो पॉज़) से लिया गया साक्षात्कार है। इसलिए स्वाभाविक है कि इस साक्षात्कार के केंद्र में साहित्य और कला संबंधी प्रश्न हैं। लेकिन साक्षात्कार इन सवालों तक ही सीमित नहीं है। वह राजनीति, धर्म, दर्शन और संस्कृति के व्यापक सवालों से भी जुड़ता है। इसमें व्यक्त चिंताएँ भारत और मेक्सिको तक सीमित नहीं है बल्कि सभी देशों और संपूर्ण मानवता से संबंधित है। ऑक्टेवियो पॉज़ की अपनी एक स्पष्ट विश्व दृष्टि है। संभव है कि हम उससे पूरी तरह सहमत न हों।

इस साक्षात्कार में श्रीकांत वर्मा ने ऑक्टेवियो पॉज के सामने प्रश्न ही रखे हैं, अपना मत प्रायः नहीं रखा है। लेकिन उनके प्रश्नों में ही उनके वैचारिक दृष्टिकोण को हम कुछ हद तक पहचान जाते हैं।

श्रीकांत वर्मा द्वारा लिया गया यह साक्षात्कार जितने व्यापक प्रश्नों को अपने दायरे में लाता है, वह इसे एक महत्वपूर्ण साक्षात्कार बना देता है, लेकिन प्रायः साक्षात्कारकर्ता ऐसे प्रतिप्रश्न पूछने में असफल रहा है जिससे कि ऑक्टेवियो पॉज़ को अपनी बात ज्यादा स्पष्ट रूप में कहने का अवसर मिलता या उनके दृष्टिकोण में निहित अंतर्विरोधों को उजागर किया जा सकता।

इन सीमाओं के बावजूद यह एक महत्वपूर्ण साक्षात्कार है जो हिंदी पाठकों के वैचारिक दायरे का विस्तार करता है।

अभ्यास

1. उपर्युक्त साक्षात्कार में जिन महत्वपूर्ण मुद्दों पर **ऑक्टेवियो पॉज** ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, उनका संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
2. एक साहित्यिक विधा के रूप में साक्षात्कार के महत्व और प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।